दुर्भिक्ष

लेखक—
श्री पं० रामचन्द्र तिवारी

प्रकाशक—
मानवधर्म कार्यालय, पीपल महादेव, देहली।

प्रथम बार १९४४

मूल्य ॥)

देश के पूर्वीय भाग में अन्नाभाव से मानव की जो दशा हुई है उसका वर्णन समाचारपत्रों में छपता रहा है, उन्हीं के आधार पर एक दरिद्र ग्रामीण परिवार के अनुभव का चित्रण प्रस्तुत कथा में किया गया है। क्षुधाहत आत्माओं के प्रति हम अपनी विवश शांति कामना प्रेरित कर सकें, यही भावना है।

—रामचन्द्र तिवारी

धीरेन ने दो पोटलियां हाथ में लटकाये घर में प्रवेश किया। घर का अर्थ यहां विशेष न था, साढ़े तीन हाथ ऊँची मिट्टी की दीवारों पर रक्खा हुआ जीर्ण छप्पर, जो वर्षा की मार से और भी जर्जर हो आया था और उसके सम्मुख लकड़ियां गाड़ कर बनाया हुआ छोटा सा घेरा। मिट्टी की दीवारों की सीमा दो भागों में विभक्त थी। छोटी कोठरी में घड़े रक्खे थे, ईंधन रक्खा था और बड़ी कोठरी में परिवार रहता था। दीवार के सामने जो सायबान था उसी में भोजन बनता था।

धीरेन ने लाकर दो पोटलियां अपनी माँ इन्दुमती के सम्मुख रख दीं। माँ ने मुख उठाकर पुत्र की ओर देखा।

धीरेन छब्बीस वर्ष का बलिष्ठ कर्मठ युवा, चमकीला श्याम वर्ण, पर मुख चिंता ग्रस्त, जैसे कि भादों की अँधियारी भयावह रूप से उमड़कर चाँद पर छा जाती है।

और माँ इन्दुमती विधवा। धीरेन के आश्रय अपना जीवन निर्वाह का उन्होंने विचार कर लिया था। धीरेन परिवार का कमाऊ सदस्य था। उसके अतिरिक्त थी उसकी छोटी बहिन प्रतिमा, जो इन दिनों सूर्य की ओर मुख किये मुग्ध सूर्यमुखी की भांति खिल रही थी; धीरेन की पत्नी आशा; और उसके कन्या पुत्र, शशि और कमल।

माँ ने सोच रक्खा था कि प्रतिमा का विवाह करने के पश्चात् वह वृन्दावन चली जायगी। इससे उसका बुढ़ापा और परलोक सुधर जायगा और धीरेन पर भी गृहस्थी का भार हल्का हो जायगा। अकेला लड़का है, इतनों को खिलाने के लिये कहाँ तक कमावे, और आजकल के दिन जब कि अन्न का भाव चील की भांति आकाश में चढ़ा जा रहा है। बस परमात्मा वर्ष दो वर्ष और निर्वाह कर दें, उसके पश्चात् उनके जीवन की सब साध पूरी हो चुकेगी और वे भगवत् भजन में अपना चित्त सम्पूर्णतः लगा सकेगी।

वे बोली नहीं, केवल पुत्र के मुख की ओर देखा

भर। पर प्रश्न उनके नयनों से जैसे उबला पड़ता था। पुत्र की चिंता उनमें जाकर जैसे शतगुणी हो उठी।

"माँ! बाजार में कुछ नहीं है, एक रुपये का यह तीन पाव चावल मिला है और—।" इसके आगे जैसे वह बोल न सका। आवश्यकता ही नहीं थी। माँ के सम्मुख स्थिति और भी प्रत्यक्ष थी।

और...? और? और-? अनन्त और उनके सम्मुख थे। उनकी बीघा भर भूमि जो कुछ देती थी, वे सब समाप्त कर चुके थे। धीरेन की मजदूरी पर निर्वाह था। पर वह क्षेत्र धीरे-धीरे संकुचित होता जा रहा था; और चावल का भाव! माँ ने देखा कि दो दिन पश्चात् भोजन खरीदने का साधन उनके पास नहीं है। जो कुछ वे कह सकीं वह था केवल विवशता का द्योतक, भाग्यके सम्मुख नत मस्तक होने की स्वीकृति "बेटा!"

धीरन ने गर्दन झुका ली और वहाँ से चला गया। भगवान कैसा समय ला रहा है?

शशि ने एक ओर मिट्टी का घर बनाया था, कमल

उसे बार बार गिरा देता और फिर शशि तथा कमल दोनों खिलखिला कर हँस पड़ते।

आशा ने यह समाचार सुना वह और भी शोक ग्रस्त हो गयी।

शशि ने हँसते हुए पुकारा, "मां देखो भैया क्या कर रहा है?"

आशा ने ध्यान नहीं दिया। शशि ने साग्रह फिर पुकारा! पर मां ने सुना नहीं। भैय्या के खेल में उसे अत्यंत आनन्द आरहा था। माँ को भी इस आनन्द का कुछ भाग वह देना चाहती थी। मां का ध्यान इस ओर नहीं है तो वह बलात् उनका ध्यान आकर्षित करेगी।

इस बार वह अत्यन्त असन्तुष्ट हो कर जोर से चीखी "माँ देखो न!"

आशा को लगा कि यह बालक उसे इतना तंग क्यों करते हैं? वह संयम खो बैठी। जाकर शशि को पीट दिया। "क्यों इतना शोर मचाती है, अभागी से चुपचाप नहीं खेला जाता।"

इसके पश्चात् जब उसके नयन नन्हें कमल

से मिले तो उसकी आत्मा रो पड़ी। उसे लगा जैसे कि कमल पूछ रहा है "मां तुमने ऐसी अच्छी शशि को क्यों मारा ? क्या मुझे भी मारोगी ?"

धीरेन ने यह दृश्य देखा। उच्च स्वर से बोला "क्यों मार रही हो उन्हें ?" पर उसकी वाणी में बल नहीं था।

क्यों ? यह सब अपराध उसी का है। उसी अकेले का है। वह क्यों नहीं परिवार के उदर-पोषण की आवश्यकतानुसार कमाता।

लज्जा और विवशता के बीच पिसते हुए हृदय को लेकर वह बाहिर चला गया। वह घोर परिश्रम कर सकता था, पर इस अन्नाभाव के विरुद्ध युद्ध... !

(२)

आशा और इन्दुमती ने भगवान से कितनी विनती की। करोड़ों आशाओं और इन्दुमतियों के हृदय की पीड़ा से तर वह विनती करुणा निधान के सिंहासन के चारों ओर हाथ जोड़े घूमी। रोकर मस्तक फर्श पर मार कर प्रार्थना की, पर भगवान पर

जैसे किसी का प्रभाव न पड़ा। अभाव और भी व्यापक होता चला गया। मानव की समस्त शक्तियां कुण्ठित होगयीं। पंगुता उसकी सद्भावनाओं और प्रयत्नों पर छा गयी। अन्नाभाव दुर्भिक्ष में परिवर्त्तित हो गया।

धीरेन ने कुछ पत्ते लाकर आंगन में डाल दिये और फिर अपने परिवार की ओर देखा। जैसे शरीर वह बाहिर देख आया है वैसे ही यहां भी हैं सबके शरीरों पर पीलापन छागया है! झुर्रियां पड़ने लगीं हैं और, और उससे भी भीषण है कि पंजरों में पसलियां चमकने लगी हैं। पर सब हुआ है धीरे धीरे, बिना किसी रोग के, रोग यदि था तो वह था अभाव। ऊपर, नीचे, चारों ओर अभाव। सूर्य से तपता आकाश कहता जान पड़ता कि मैं क्या कर सकता हूँ, भई। और धरती जैसे करुणा से अपना मुख छुपा लेती; लगता कि किसी महान शक्ति के वश यह प्राण दाता प्राण घातक बन रहे हैं।

घोर अभाव था। मृत्यु का अभाव था। लगता था कि मृत्यु धीरे-धीरे ग्राम में प्रवेश कर रही है,

यदि अन्न नहीं आया तो वह घर-घर में घुस जायगी। अन्न, अन्न, अन्न। लोग नगरों को भागे। पर कहीं अन्न है ही नहीं और पता नहीं कब तक नहीं होगा। जिनके पास कुछ है भी, वे भी अपने द्वार बन्द किये हैं। जीवन के लिये युद्ध में वे साधन कैसे त्याग दें ?

धीरेन ने देखा कैसे भी हो मृत्यु धीरे-धीरे, पर निसंशय रूप से उसके घर में प्रवेश पा रही है। पड़ोसी का चार वर्षीय पुत्र मर गया है। कहते हैं रोग से, पर वास्तव में भूख से। अन्नाभाव में घड़े के टुकड़े कूट-कूट कर उन्होंने खाये हैं, सब मरेंगे। पर क्या उसके लिये भी यही भाग्य में है ?

आशा ने साग उबाला और परस दिया। मां ने देखा कि सूखे हुए धीरेन का वस्त्र फट गया है और शरीर कई स्थानों से लहू-लुहान हो रहा है।

उसने ध्यान पूर्वक उसकी ओर देखा। इस विषय पर प्रश्न की आवश्यकता न थी। पुत्र का अत्यंत गम्भीर, पीला, सूखा मुख कुछ और भयानक कथा कह रहा था।

"मां अब यह घास पात मिलने का सुभीता भी

नहीं जान पड़ता। सब साफ हो गया है। कितने धक्का मुक्की के पश्चात इतना ला पाया हूँ।"

मां को इस पर जैसे विश्वास न हुआ। भगवान क्या उन्हें पशुओं की भांति घास पात भी नहीं खाने को देंगे। उन्होंने एक विचित्र दृष्टि से धीरेन की ओर शेष परिवार की ओर देखा। उस दृष्टि में कुछ अत्यंत करुण और निगूढ़ वस्तु थी कि धीरेन का हृदय तिलमिला उठा और जो दो कौर वह खाने जारहा था वह उसके गले से नीचे नहीं उतरे। वह पानी पी उठ कर खड़ा हो गया। पर खड़े होने पर सधने के लिये उसे दीवार का सहारा लेना पड़ा।

उसे लगा कि उसमें परिवर्तन हो गया है क्या उसकी मृत्यु भी निकट आ रही है? इस विचार ने उसके प्राणों को जैसे शरीर से चिपटा दिया। नहीं वह मरेगा नहीं वह मृत्यु का विरोध करेगा, उससे लड़ेगा। वह न स्वयं मरेगा और न अपने परिवार के किसी व्यक्ति को मरने देगा। वह मृत्यु की चुनौती स्वीकार करेगा। और इस विचार से बल पा कर वह घर से निकल खड़ा हुआ।

मानव जीवन इस समय पशु जीवन हो गया। धीरेन को चौबीस घण्टे भोजन की टोह में घूमना होगा तब कहीं कुछ आशा होगी।

वह चल तो दिया पर कहाँ जाये? गांव में कुछ पाने की आशा नहीं है। पर फिर भी, और वह एक गली में मुड़ गया। सोचा साहु के यहाँ कदाचित कुछ...? पर साहु के घर तक पहुंचते उसकी आत्मा भयभीत हो गयी। गली उसे सुनसान लगी। उसने मृत्यु की चुनौती स्वीकार की थी, उसका भय उसे न लगा था, पर अब उसे लगा कि मृत्यु को सशरीर इस सुनसान गली में उसने पाया है। उसका शरीर पसीने से नहा उठा।

आशाने डग शीघ्रता से उठाये। साहुके द्वार पर देखा कि द्वार भीतर से बन्द है, जैसे कि मृत्यु के भय से; और उसे आगे बढ़ जाना पड़ा। इस गांव में उसे भय अनुभव होने लगा। उसे लगा कि गांव के बाहिर जंगल में यदि कुछ मिले तो...।

वह शीघ्रता से चला जा रहा था; कि उसने एक व्यक्ति को गली में दीवार के सहारे बैठा देखा वह

उसके सम्मुख जा खड़ा हुवा। अंग प्रत्यंग सूखे, पिचके कपोल, सूखे फटे ओंठ, उनमें दीखते भद्दे निर्जीव दांत, और ज्योति विहीन नेत्र। पहिचाना उसका सखा कालीदास।

उसने हाथ पकड़ कर उसे हिलाया और दूसरे ही क्षण वह पसीने से तर हो गया। वह केवल कालीदास का शरीर मात्र था। कालीदास तो जा चुका था। वह दीवार के सहारे से मृत्यु से लड़ना चाहता था और मृत्यु विजयी हुई थी। धीरेन वहाँ खड़ा न रह सका। उसने चाहा कि वह तुरन्त गाँव से बाहिर निकल जाये। पर भूमि तो चलनी ही थी और इस अवस्था में वह दो सौ गज़ भूमि उसे दो सौ मील हो गई वह जितना आगे बढ़ता था, उतनी ही भूमि जैसे पीछे हटती थी।

उसने मोड़ पर कुत्तों के गुर्राने की आवाज़ सुनी। उत्सुकता वश घूमकर देखा। एक बालक का शरीर था जिसकी एक कुत्ता रक्षा कर रहा था और तीन कुत्ते जिसे खाने का प्रयत्न कर रहे थे।

उससे रहा न गया। जाकर कुत्तों को हटा

दिया और उस शिशु को उठाया। उठा तो लिया पर करे क्या ?

उसे अब अपने पर वश नहीं रहा। एक प्रकार का नशा उस पर छा गया। वह उस शिशु को लिये गाँव से बाहिर निकल गया। एक गड्ढे में फेंककर कुछ मिट्टी उस पर डाल दी, और स्वयं एक गिरे पेड़ पर बैठकर चिन्ता मग्न हो गया। कुत्ते आकर उस बालक पर से मिट्टी हटा रहे हैं इसकी ओर उसका ध्यान न गया।

तब उसके मन में ध्यान आया कि उसके कमल की भी यह दशा हो सकती है। एक धक्का उसे अनुभव हुआ। एक विचित्र शक्ति जैसे उसमें आ गई। नहीं वह उन्हें मरने न देगा।

उसने देखा कि दो तीन और मानव पंजर वहीं इधर-उधर निरुद्देश से घूम रहे हैं, जैसे कि निर्जीव शरीर वाहकों के अभाव में वे स्वयं ही श्मशान में मरने को आ गये हों। नहीं वह किसी को मरने न देगा।

वह उठा और शीघ्रता से एक ओर को चल

दिया। उसके चेहरे पर आशा का उल्लास था। वह अब भी मृत्यु को पराजित कर सकता है।

जिस समय वह घर पहुंचा तो उसके वस्त्रों के नीचे छुपा एक मृत सुअर का बच्चा था। अब उसका परिवार मरेगा नहीं। भगवान जान चाहते हैं, वह उसने उन्हें दे दी है।

उसने इस भोजन को निकाल कर आंगन में रख दिया।

माँ ने देखा, पत्नी ने देखा और बहिन ने देखा। माँ ने सोचा कि वैष्णव हो कर मरते समय वह अपना जन्म भ्रष्ट न करेगी।

पत्नी मौन रही। उसने करुणा भाव से पति के मुख की ओर देखा। उसमें सहानुभूति थी। वह उसे समझ पा रही थी।

पर बहिन प्रतिमा में वैष्णवत्व बैठा न रह सका, वह पराजय स्वीकार न करेगा। इस चुनौती से जैसे उसकी आत्मा उठकर खड़ी हो गई।

बोली, "भैया यह क्या? यह अभक्ष्य खाकर जीने से क्या लाभ? इससे तो मर जाना ही अच्छा

है।" फिर वह उठी और उसे उठाकर घर से बाहिर फेंक आई। वह तुरन्त ही वहाँ से उठा लिया गया।

धीरेन ने बहिन का यह कृत्य देखा। वह शांत रहा। जैसे जगा, पर शीघ्र ही सो गया। उसने रिक्त दृष्टि से सम्पूर्ण परिवार की ओर देखा। जो कुछ मैं कर सकता था किया, और आगे करूँगा, की भावना से लड़खड़ाता घर से बाहिर हो गया।

माँ के नयनों से दो आँसू ढुलक पड़े। उसने गाँव में आजकल होने वाली मौतें देखी हैं। उसे लगा कि धीरेन उसी अंध कूप के किनारे-किनारे चल रहा है तनिक सा धक्का लगते ही जा पड़ेगा।

आशा का हृदय कितनी भावनाओं से भरा आ रहा था। वह चाहती थी कि जाकर धीरेन के पैरों से लिपट जाये। कहे कि गाँव में हमारे जैसे और मर रहे हैं, हम भी मरेंगे। पर तुम जाओ मत। हम मरेंगे पर एक दूसरे को देखते हुए। अब जाओ मत मेरे जीवनधन! हम साथ रहे हैं, हँसे हैं, साथ ही क्यों न मरें?

पर वह निश्चल रही। सास की उपस्थिति दृढ़ द्वार बन गई और धीरेन बिना किसी की ओर देखे अभाव से भरे संसार में चला गया।

(२)

धीरेन चला तो गया, पर घर में एक कांटा छोड़ गया। प्रतिमा की माँ और भौजाई दोनों ने उसकी ओर इस दृष्टि से देखा कि तूने यह क्या किया? मेरा धीरेन अब लौटकर नहीं आयेगा। वे अब लौटकर नहीं आयेंगे। वाक्य बोले नहीं गये। मानों कि प्राण शरीर में स्थित रहने के लिये तनिक-तनिक सी शक्ति बचाकर रख रहे हों। शब्दों की बहुलता में जो भावना छिछली होकर छुप जाती है, उनके अभाव में वह अपने पूर्ण केन्द्रित रूप में प्रकट हुई।

माँ और भाभी यदि कुछ कहतीं तो कदाचित् प्रतिमा उसका उत्तर देती और इस कहा सुनी में उस दृष्टि से उत्पन्न हुआ प्रतिमा में विरोध और विराग हलका पड़ जाता और घर छोड़ कर निकल जाने की जो तीव्र अभिलाषा उसके हृदय में अब उत्पन्न हुई वह न होती। भ्रातृघातिनी वह क्या

परिवार में रहने योग्य है? पर वह वहाँ से जाये किस बहाने?

वे सब कुछ भूल गईं। बालक जो पहिले रोते थे अब वे केवल असमर्थ रीं-रीं करते थे और अधिकतर प्रायः केवल करुण निरीह दृष्टियों से बड़ों की ओर देखते। उनके शरीर सूख-सूखकर कांटा हो रहे थे। पसलियां चमक रही थीं, मुख पर खाल हड्डियों से चिपट कर रह गई थी, और जहां यह न्यूनतायें उनमें आई थीं वहां उनके नयनों में भाव व्यक्त करने की शक्ति अनन्त गुनी बढ़ गई थी।

उस दृष्टि में कितने भावों का संमिश्रण निरीह विवशता से आच्छादित था। वह मृत्यु के क्रीड़ास्थल बन रहे थे। वह उनमें से झांक रही थी और इसी से माँ और दादी उन नयनों से नयन मिलाते भयभीत होती थीं। प्रतिमा वहाँ से जाना चाहती थी। यद्यपि इन नारियों के नयनों की भावना भी लगभग वैसी ही थी पर वह प्राण विदारक गहराई उनमें नहीं थी।

धीरेन के चले जाने से उस परिवार पर जैसे

पाला पड़ गया। जीवन की मन्द गति जो क्षुब्ध हो गई थी, पंगु पड़ गई। माँ, भौजाई और बहिन सबकी आंखें द्वार की ओर लगी रहीं। पर धीरेन का कहीं नाम भी न था। कभी-कभी कोई लड़खड़ाता जीर्ण कंकाल उस ओर से निकल जाता जैसे कि श्मशान से भूतों ने उठ कर गाँव पर धावा बोल दिया हो। ये जीवित जन जो स्वस्थ अवस्था में प्राणों में पुलक भरते थे, अब उसे भय से भरने लगे।

तीनों देखती रहीं। अडिग देखती रहीं। अब उनका धीरेन नहीं आयेगा। वह चला गया, सदा के लिये चला गया। नहीं आयेगा। माँ के हृदय में गूँजा नहीं आयेगा। वायु के झोंके ने कहा नहीं आयेगा। बालकों ने स्तब्ध कहा, हां, अब दादा नहीं आयेंगे। छप्पर ने, घिरते अंधकार ने उसका समर्थन किया। आशा के प्राण अंधकार से पूरित होने लगे। वे नहीं आयेंगे। उसका जीवन अब अपना नाटक समाप्त करने जा रहा है। उसे मौत क्यों नहीं आ जाती?

मौत के बीच यह मौत को निमंत्रण विचित्र था। पर था प्राणों के पूरे बल से।

इस घिरती अंधेरी में एक भय था। सास बहू दोनों द्वार पर से भीतर चली गईं। किसी ने प्रतिमा से भीतर चलने को न कहा। वह सब समझ वहीं बैठी थी, लेट गई। जिधर धीरेन गया था, उस ओर उसकी दृष्टि लगी थी, और उससे भी अधिक उसका ध्यान उस स्थान की ओर था जहां वह मृत सुअर-शावक उसने फेंका था। वह अपने मृत्यु विस्फारित निस्पृह नेत्रों से उसकी ओर देखता रहा था।

मन में उठता कि उसने फेंका क्यों? क्या धीरेन वास्तव में लौटकर नहीं आयेगा?

फिर पड़ोस की झोंपड़ी में उसका ध्यान गया, जहां कि सुबोध के रूप में उसका हृदय रहता है। सुबोध उसे अच्छा लगता है और बहुत अच्छा लगता है, जैसा कि कहानियों में राजा राजकुमारी को अच्छा लगता है। परिवार की ओर से उसे सुबोध से दूर रहने की आज्ञा है। पर वह जानती

है कि जितना वह उस आज्ञा का पालन करती है उतना ही वह सुबोध के और निकट होती जाती है उसे लगा है कि सुबोध के बिना सरेगा नहीं। और उस झोंपड़ी से उसने आज किसी को निकलते नहीं देखा।

सुअर-छौने का मृत शरीर उसके सम्मुख प्रत्यक्ष हो आया। मन में तीव्र विद्रोह उठा क्यों फेंका? नहीं धीरेन लौटकर नहीं आयेगा। उसका अकेला भैया, जिसने उसे गोद में खिलाया है, दुलारा है, लौटकर नहीं आयेगा। उसने अंधकार में देखा, लौटते धीरेन की कल्पना की। पर निष्फल। धीरेन नहीं आया। समय बीतता गया।

जब उसके नेत्र खुले तो पता चला कि वह वहीं सो गई थी। माँ उसे भीतर घसीट रही है, उसने सुना, "कमबख्त मर भी तो नहीं जाती, प्राण लेने को जन्मी है।"

वह एक दम सचेष्ट हो गई। जैसे हाथी को अंकुश मार कर जगा दिया गया हो। वह उठ कर अपने बल पर खड़ी हो गई और भीतर गई।

एक कोने में पड़ रही, पर यकायक नींद न आई। उसे अनुभव हुआ कि वह अब इस घर में भार है। कोई उसे प्रेम नहीं करता, वह निकल जायेगी, अब इस घर से निकल जायगी और इसके पश्चात् कब उसे नींद आ गई यह उसे पता नहीं चला।

रात्रि को धीरेन लौटकर नहीं आया। आशा छटपटाई; माँ की आत्मा चीत्कारी; पर जो जीवन संघर्ष का अभावुक सत्य था वह हिमाचल सा अचल रहा। धीरेन के लौटने के लक्षण कुछ दिखाई न पड़े।

दोपहर हो आया पर धीरेन का कहीं पता नहीं। प्रतिमा को वह घर भारी हो गया। उसे अनुभव हुआ कि घर में कुछ है जो उसे वहां से निकाल बाहिर करना चाहता है, यह वही शक्ति है जो वर्षा में चींटियों के पर निकाल कर उन्हें बाहिर उड़ने को, और इस क्रिया में मरने को प्रेरित करती है।

प्रतिमा ने कहा, "माँ देखूँ मैं कुछ मिल सके तो लाऊँ।"

माँ ने जल-विहीन नेत्रों से युवती पुत्री की ओर देखा, और कुछ बोल न सकी। वह किस बल पर

उसे रोक सकेगी, घर में क्या है ? यदि धीरेन कुछ लेकर नहीं आया तो मृत्यु प्रत्यक्ष है। प्रतिमा बाहिर खोजने पर कदाचित खाने को पा जाये और जीवित रह जाये।

"अच्छा बेटी !"

और बिना किसी भावुक प्रदर्शन के वह मृत्यून्मुख प्रतिमा घर से भोजन की खोज में निकल पड़ी। गलियों में घूमी। देखे दम तोड़ते अस्थि-पंजर और प्राण विहीन कंकाल। यदि वह स्वस्थ होती तो कदाचित भयभीत हो जाती, पर इस समय एक कम्प के पश्चात् उसे इनसे भय न लगा। कंकाल को कंकाल से क्या भय।

पर इस दृश्य ने प्राणों के प्रति उसके ममत्व को अत्यन्त बढ़ा दिया। निश्चय किया कि वह मरेगी नहीं।

धीरेन जिनके यहाँ काम करता था, उन ज़मींदार के द्वार पर वह पहुंची। देखा द्वार बन्द है, उसने द्वार पर धक्का मारा, पर कोई प्रभाव न हुआ। उसे अनुभव हुआ कि भीतर से कोई व्यक्ति किवाड़ के

निकट आया है और दरारों में से उसकी ओर देख रहा है। क्षीण स्वर से उसने पुकारा, "मालकिन माँ!"

तभी किवाड़ धीरे से खुलते जान पड़े और उसकी गोद में पाव के लगभग चावलों की पोटली फेंक कर बन्द हो गये।

प्रतिमा ने वह पोटली छुपा ली, उसका मुख खिल उठा। वह अब घर लौट जायगी, दो दिन तक जीवित रहने का सहारा उसे मिल गया है।

वह आगे बढ़ी। अभी पन्द्रह डग ही गई होगी कि एक विशालकाय नारी पंजर उस पर टूट पड़ा। प्रतिमा को कुछ मिला है यह वह कंकाल देख रहा था। जीवन के लिये मानव अपने मूल पशु रूप में परिवर्तित हो गया था। क्षीण चीख मारकर प्रतिमा गिर पड़ी। कंकाल ने उसकी गोद में से पोटली छीन लेने की चेष्टा की। प्रतिमा ने अपनी असमर्थता अनुमान ली। उसने पोटली अपने मुख से फाड़ डाली और जितना आ सकता था उतना चावल अपने मुख में भर लिया, शेष भूमि पर बिखर गया।

पर उस कंकाल ने उसका गला दबा लिया और मुख में से चावल निकाल लेने को प्रतिमा के मुख में अँगुली डाल दी। प्रतिमा की प्रथम भावना पराजय स्वीकार कर सब उगल देने की हुई, पर दूसरे क्षण ही उसके दांत कंकाल की अँगुली पर भिंच गये और वह कंकाल एक हल्की चीत्कार कर उसके ऊपर से हट गया।

प्रतिमा उठी और उस स्थान से चल दी। वह नारी कंकाल भूमि पर बिखरे एक-एक दाने चावल को बीन कर खाने नहीं, अपने आँचल में एकत्रित करने लगा। उसका पति द्वार के भीतर अपने अन्तिम क्षण पूर्ण कर रहा था।

प्रतिमा चली। जी में आया कि चावल को मुख में से निकाल कर गांठ में बाँध ले जिससे वह शशि और कमल के काम आ सके। पर यदि किसी ने उससे वह भी छीन लिया तो क्या करेगी वह और वह उन चावलों को मुख में चबा गई।

पर कहीं से शशि और कमल के लिये भोजन का प्रबन्ध होना चाहिये। उसका मस्तिष्क ठिकाने

न था पर पैर उठे जा रहे थे। अवचेतन उसे दिशा दे रहा था। हठात् एक टूटे से द्वार के सम्मुख जाकर वह रुक गई। और फिर उसका मस्तक झुक गया। यह मलिक का मकान था। मलिक जो प्रतिमा पर अपना अधिपत्य जमाना चाहता था। विवाह के लिये नहीं, मनोरंजन के लिये। उसके प्रति जो राग भावना थी वही उसे वहां तक खींच लाई थी।

प्रतिमा ने सर्वदा अपनी समझ में मलिक से घृणा की है, पर आज उसके चरण उसे उसके द्वार पर खींच ले गये हैं, क्योंकि उन्हें उसके यहाँ सहायता की आशा है और तब अचानक प्रतिमा को लगा कि यदि वह अपना तन बेच कर भी शशि और कमल के लिये, माँ और भौजाई के लिये कुछ प्राप्त कर सके तो कितना अच्छा हो। और इसके पश्चात् जैसे समस्त समस्या उसके सम्मुख खुल गई। उसे अपने को बेचना है।

बिक्रेता की लोलुप दृष्टि से उसने उस टूटी झोंपड़ी की ओर देखा। जैसे कि उसके रूप पर

मुग्ध मलिक युवा निकल कर उसका स्वागत करेगा और फिर......। आगे सोचने विचारने का उसे अधिकार क्या है? वह बेचेगी। उसने निश्चय कर लिया है कि वह अपने आपको बेचेगी।

वह उस टूटे से द्वार के निकट गई। कहीं पर कोई गति लक्षित न होती थी। एक स्तब्ध शांति व्याप्त थी, जो अपनी निरंतर स्तब्धता से और भी भयानक हो रही थी। पर्याप्त समय तक वह उस द्वार के सम्मुख खड़ी रही। पर कहीं जीवन के चिह्न उसे दिखाई न दिये। वह आगे बढ़ी, किवाड़ों को थपथपाया, पर उसका कोई उत्तर नहीं। वह थोड़े खुले थे और भी खुल गये। और इसके पश्चात् उसे ऐसा लगा कि एक सड़ांध का झोंका भीतर से आया और उस को जगाता सा चला गया।

उसे अब जैसे अपनी मूर्खता अनुभव हुई। मलिक की अवस्था उसके भाई से विशेष अच्छी नहीं है। वह या तो मर गया होगा या कहीं भाग गया होगा। प्रतिमा उसके लिये अनन्त काल तक आदर्श सती

की भांति प्रतीक्षा कर सकती है। उस तनिक सी भूल से वह अपने से झेंप गई।

कोई उसे वहां देख न ले, इसकी लाज उसे लगी और शीघ्र ही उसके द्वार के सामने से हट गई। पर मुख्य समस्या का हल शेष था। भोजन, भोजन की आवश्यकता अत्यन्त तीव्र थी, और फिर जैसे उसके किसी भाग ने कहा, "मैं अपने को बेचूँगी।"

"हाँ मैं अपने को बेचूँगी।" दूसरे भाग ने दृढ़ता से दुहराया। तब उसे लगा कि देवदासी माँ के यहां उसे जाना चाहिये।

गांव में समाचार व्याप्त था कि देवदासी माँ लड़कियों को बहका फुसलाकर, उनके अभिभावकों से खरीद कर पछाँह के लोगों के हाथ बेच देती है। और प्रतिमा अब पछाँह जाने को तैयार हो गई। उसका ऊपरी मन भयभीत न था, पर प्राण अनजाने कांप रहे थे। वह सोच रही थी कि इससे जो धन मिलेगा वह शशि और कमल के लिये होगा, पर वास्तव में वह स्वयं इस भूख की भीषण ज्वाला से निस्तार पाना चाह रही थी।

देवदासी माँ का मकान गांव से बाहिर कोई मील भर की दूरी पर था, और वहां तक पहुंचना प्रतिमा के लिये इस अवस्था में कठिन ही नहीं प्रायः असम्भव था। पर वह चल पड़ी। चलती, हांफती, पेट पकड़ती, वृक्षों का सहारा लेती वह चलती गई। ज्यों-ज्यों उस मकान के साथ लगे मन्दिर का कलश निकट आता जाता था उसका संशय बढ़ता जाता था। क्या यहां भी निराशा मिलेगी ? पर नहीं, वह अपने को बेचेगी, देवदासी माँ के हाथ बेचेगी।

वह चल पड़ी। उसे अनुभव हुआ कि वह चलती चली जारही है, और देवदासी मां का घर भी चल रहा है। एक बार उसे लगा कि बस अब आगे चलना नहीं हो सकेगा। बैठ जाने की तीव्र उत्कण्ठा हुई, पर उसके साथ उसे भय भी लगा कि वह यदि बैठ गयी तो पता नहीं उठ कर खड़ी भी हो सकेगी या नहीं ? इसलिये वह बैठी नहीं। एक वृक्ष का सहारा लेकर खड़ी होगयी।

अकस्मात् उसके सम्मुख आशा का प्रकाश छा गया। उसे लगा कि देवदासी मां ने उसे रखलिया

है। शशि और कमल का क्या हुआ इसे वह एक दम भूल गयी। उसने देखा कि वह मां के मकान के भीतर पहुंची, उसके सम्मुख भात है और...। उसका हृदय उछलने लगा। विचारा. वहाँ से वह पश्चिम को भेज दी जायगी।

हाँ, घर लौटकर अब क्या करना है। वहाँ तो मृत्यु निश्चित ही है। मां है। पर वे उससे असन्तुष्ट है। नहीं वह उन्हें बिल्कुल भूल जायेगी।

सफलता की इस कल्पना ने उसके शरीर को बल प्रदान किया और वह आगे बढ़ी। पर ज्यों ज्यों देवदासी मां का घर निकट आता जारहा था, वह चिंतित होती जारही थी। पता नहीं यहां भी उसे असफलता ही मिलेगी ? उस घर के चारों ओर की स्तब्धता से उसकी आशंका और भी बढ़ गयी थी। वह स्तब्धता थी जिसमें मृत्यु पक्षी के परों की फड़फड़ाहट स्पष्ट सुन पड़ती थी। एक बार प्रतिमा ठिठकी।

क्या वह जाये देवदासी के द्वार पर ? इससे तो मर जाना श्रेयस्कर है। और फिर जैसे उसके

विवेक के सम्मुख एक अंधकार छा गया। उसका अपने पर कोई वश नहीं रहा।

वह जब जागी तो देखा कि एक अत्यंत बूढ़ी नारी द्वारके भीतर से उसे भाग जाने को कह रही है

उस नारी कंकाल की अवस्था प्रथम कंकाल से भी भयानक थी। प्रतिमा को लगा कि उसे भगाने के लिये वह श्मशान से उठ आयी है। अब जब वह जागी तो उसे लगा कि वह क्या कर बैठी है। यदि कोई उसे इस स्थान पर देख लेगा तो क्या कहेगा? उस स्थान के प्रति एक विराग हुआ जो शीघ्र ही विरोध में परिवर्त्तित हो गया। वह वहां से भाग चली। इस क्रिया में वह लड़-खड़ाती गिरने को हुई। और तब उसे ध्यान आया कि वह भाग नहीं सकती। चाल धीमी की। पर यह उन्माद उतरते ही उसकी जैसे समस्त शक्ति सूख गयी। अब वह आगे नहीं जा सकेगी। निकट ही तालाब उसे दिखाई दिया। उस ओर वह गयी और फिर वह जैसे सब कुछ खोकर नीचे बैठ गयी।

उसके सम्मुख इस समय निराशा के अतिरिक्त

और कुछ नहीं था। दिन की इस दोपहरी में भी उसे संसार में कुछ दिखाई न देता था। उस के सम्मुख जो प्रश्न था, वही उत्तर भी था। चारों ओर कंकालों के बीच वह स्वयं कंकाल थी और अब इससे जैसे वह ऊब रही थी। पर फिर भी कौन है जो जीना नहीं चाहता? बुद्धि कहती थी कि इस स्थिति से तो शीघ्र मृत्यु आ जाये। पर प्रकृति की छलना जीवन को बार बार मोहक रूप देकर सम्मुख ला रही थी।

उसने गीली मिट्टी को हाथ से हटाना प्रारम्भ कर दिया। ठण्डी ठण्डी भूमि का स्पर्श उसे सांत्वना दे रहा था, कि उसकी दृष्टि नागरमोथे की एक जड़ की गाँठ पर पड़ गयी। उसने शीघ्रता से उसे निकाला, पोंछा और मुख में रख लिया।

वह कड़वी जड़ उसे अत्यंत स्वादिष्ट लगी। उसकी सुगंधि जैसे उसके समस्त अस्तित्व में व्याप्त हो गयी। वह अब मरेगी नहीं। यही मूल खोद खोद कर खायेगी। बस तनिक देर विश्राम भर कर ले। कोई तोला भर जड़ें खाने के पश्चात उसे

अनुभव हुवा कि वह बहुत थक गयी है। विश्राम अत्यंत आवश्यक है। वह बैठी थी, अब लेट गयी। पर लेटे रहने में भी उसे लगा कि पूर्ण विश्राम नहीं मिल रहा है। वह वास्तव में बहुत थक गयी है। यदि थोड़ी देर सो पाती तो...। और उसने अपने नयन बन्द कर लिये।

थोड़ी देर में ही वह निद्राभिभूत हो गयी। कदाचित उस निद्रा के, जो एक बार आकर जाना नहीं जानती।

(४)

मां इन्दुमती ने प्रतिमा को चले तो जाने दिया। पर उसके हृदय में शीघ्र ही उथल पुथल होने लगी। संसार कालिमा से भरा है और उसकी बेटी है बिल्कुल अनभिज्ञा। मानवता का शिखर ही उसने देखा है। उसका गर्त देखने का अवसर उसे अभी नहीं प्राप्त हुआ है। वह अपने पर क्रुद्ध हुई कि उसने उसे जाने क्यों दिया ?

यदि मरना ही बदा है तो क्यों न सब यहीं साथ

साथ मरें। पर धीरेन, वह भी लौट कर नहीं आया। उसे चुभा कि धीरेन नहीं आयेगा।

समय बीतता गया। और प्रतिमा लौट कर नहीं आयी। क्या यह तनिक सा गांव इतना बड़ा हो गया कि प्रतिमा उसे पार नहीं कर पायी? पर उसने सुना है कि आज कल मनुष्य चलता चलता अचानक मर कर गिर पड़ता है। तो क्या उसकी प्रतिमा की यही दशा हुई?

उसका हृदय भर आया। उसने कल्पना में देखा कि प्रतिमा असहाय एक तालाब के निकट भूमि पर लेटी है। उसके ओठ फटे हैं। नयन खुले एकटक आकाश की ओर देख रहे हैं। वह मरी नहीं है, पर मृत्यु को अपने इतने निकट देख रही है कि उस पर से दृष्टि नहीं हटा पाती।

उसने कल्पना की कि उसकी प्रतिमा ने बैठने का प्रयत्न किया है पर वह उठ नहीं पारही है। उसने देखा कि प्रतिमाने ओठ हिलाये हैं, जैसे कि उसने पुकारा हो "माँ।"

इस कल्पना में अचानक उसके मुख से निकल गया "आई बेटी।"

आशा ने सास की ओर देखा। उसे लगा कि सास बैठी वहां अवश्य है, परन्तु उसके नयन कहीं दूर किसी भयानक दृश्य को देख रहे हैं।

अपने ही स्वर से इन्दुमती दो क्षणों के लिये जागी और पुनः उसी अवस्था में पहुंच गयी। उसने फिर वही दृश्य अपने नयनों के सम्मुख पाया। उसकी छोटी सी प्रतिमा पड़ी है तनिक सा सहारा चाहिये और वह उठखड़ी होगी। कन्या की असहाय दशा उस वृद्धा के मन में करुणा भरती गयी और फिर इसका भार अचानक इतना तीव्र हो गया कि वह बैठी नहीं रह सकी।

उसे अचानक खड़े होते देख कर आशा ने पूछा "क्या है माँजी ?"

"बहू मैं जाऊँ प्रतिमा को खोज लाऊँ।"

आशा कांप गयी। क्या इस प्रकार एक एक करके सभी इस घर से चले जायेंगे; और इन शिशुओं की मृत्यु देखने को वह अकेली रह जायगी ?

उसे विश्वास था कि उसका पति गया है, पर वह लौट कर आयेगा नहीं; प्रतिमा भी उसी मार्ग पर गयी है और अब मांजी भी जाने को कहती हैं।

उसे लगा कि वह यह समस्त दुख का भार नहीं सँभाल सकेगी। वह मर जायेगी; पर इन दोनों बालकों को...।

बोली, "माँजी!"

बाहिर जाती इन्दुमती रुकी, "क्या है बहू?"

"माँजी!"

"क्यों?"

"माँजी, यहाँ रहने से तो मौत आयेगी ही, तुम जा रही हो शशि को लेती जाओ। मैं कमल को लेकर निकल जाऊंगी। यदि जीते रहेंगे तो फिर मिल ही जायेगें, नहीं तो भगवान की इच्छा।"

इन्दुमती को एक क्षण लगा कि बहू कितनी कुलक्षणी है। सोचती है कि मैं लौटकर नहीं आऊँगी जब देखो तब मेरा मरना ही मनाती है।

पर दूसरे क्षण ही भूख की मार के नीचे उसका विवेक लौट आया। अपने चले जाने से दो बालकों

के साथ बहू का एकांत उसे अनुभव हो गया। आशा के प्रति एक सहानुभूति उसके हृदय में उमड़ पड़ी। कुछ जल कण उसकी पलकों के नीचे एकत्रित हो गये।

उसने सोचा कि जैसी वह है उस दशा में शशि को लेकर चलने की उसकी सामर्थ्य नहीं है। पर बहू के ऊपर दोनों बालकों को छोड़ जाना! नहीं, यह अनुचित है। और बहू के कथन का सत्य उसके सम्मुख तीव्र रूपसे आलोकित हो गया। घर में रह कर तो मरने के अतिरिक्त और कोई मार्ग है ही नहीं। बाहिर निकल जाने पर कदाचित् भगवान् सुनलें। कुछ कहीं मिल जाये। और सरकार है कुछ न कुछ प्रबंध तो करेगी ही। सारा संसार भूखे ही तो मर न जायगा!

दयार्द्र होकर सासु ने कहा "अच्छा बहू।" फिर शशि को गोद में लाद,—उस शशिको जो तनिक देर भी माँ से पृथक् न होती थी, जो चैतन्यता की प्रतिमूर्ति थी, और जो इस समय पंजर में लगभग सांस मात्र रह गयी थी—घर से बाहिर निकल गई।

जिस समय इन्दुमती इस घर में धीरेन के पिता से ब्याह कर आई थी, तो उसे इसका ध्यान भी न था कि इस घर में उसकी यह दशा हो जायगी। जहाँ उसने अपने जीवन के सुनहरे क्षणों को करुण प्रेम के मोतियों से सजाया था वहाँ यह प्राणहारी दुखद दिवस भी देखने होंगे।

अपनी सासु की, अपनी देहरी को छोड़ते ही उसके नयनों में अश्रु भर आये। उसने शशि को छाती से लगा कर उस देहरी पर मस्तक टेका।

प्राणों को जैसे ज्ञात हो रहा था कि वह पुनः अब इस द्वार पर लौट कर नहीं आयेंगे। आंसुओं से उसकी दृष्टि रुंध गई, उसे कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। वह नयन मूँदे वहाँ से चली। उस द्वार की ओर से उसने अपनी दृष्टि को बाँध कर रक्खा। वह कण्ठ सीधा रखकर निश्चेष्ट शशि को हृदय से लगाये चलती गई। बीस डग पश्चात् जब वह एक गली में घूमी तो अपने द्वार को देखने का लोभ उसके प्राण संवरण नहीं कर सके। उसने घूम कर देखा। उसने नयनों में भरा जल ढुलक

कर वृद्धा के कपोलों के गड्ढों में आकर रुक गया। हृदय बैठ सा चला। पर दृष्टि का मार्ग खुल गया और निर्ममता से इन्दुमती शशि को हृदय से लगाये अपने द्वार की दृष्टि से ओझल हो गई। भूखे संसार में खो गई।

आशा ने सासु को घर से निकलते देखा। वह निश्चल बैठी रही। पर जब सासु द्वार के सामने से हट कर आगे बढ़ गई तो उसे अनुभव हुआ कि वह उस नौका पर है जो मँझधार में है, और जिसकी पेंदी में विशाल छिद्र हो गया है, जो बचती नहीं, डूबेगी, अवश्य डूबेगी।

साहस पानी भरे कच्चे घड़े की भांति फूट कर बह चला। उसे तनिक से भी सहारे की आवश्यकता अनुभव हुई। और उसने शीघ्रता से पंजर मात्र कमल को उठाकर छाती से चिपका लिया। यही उसका अन्तिम आश्रय है। भगवान ने और जिन्हें उसका समीपी बनाया था, वे एक एक करके पैसों की भांति दुर्बल अंगुलियों में से निकल गये हैं, और रही गई है इस घर में वह अकेली।

उसे अनुभव हुआ कि वह अंधेरा घर जैसे किसी भयावह पदार्थ से भर गया है। उस घर की कोठरी की ओर देखने का साहस न हुआ। वह रिक्त घर उसे काटने दौड़ने लगा। वह इस घर में अकेली रही है। कई कई दिन रही है, पर इस आशा से कि अन्य सदस्य लौटकर आ जायेंगे। पर अब वह अकेली रहेगी जब कि और किसी की लौट आने की आशा नहीं है प्रलय तक प्रतीक्षा करने पर भी। यही निराशा छुरी बन कर उसको उस घर से काट रही थी। उसने कमल को और हृदय से कस लिया। कमल पीड़ासे कसमसाया, मुख बिगाड़ा पर रोने की सामर्थ्य उसमें न थी।

वह कुछ क्षण बैठी रही। अचानक उसके मन में एक विचार उठा।

वह जितनी देर इस घर में रहती है, उतना समय व्यर्थ नष्ट करती है। इस घर से निकलने पर उसे भोजन कहीं प्राप्त होने की सम्भावना अधिक है।

भय और विवेक दोनों ने मिलकर उसे खड़ा कर दिया। घर फिर भी उसका है। यदि वह बच

गई तो इस घर में ही लौटना होगा। उसका कमल आखिर बड़ा हो कर कहाँ रहेगा ? कुछ भी हो यह घर उस का है। वह उसे इस प्रकार छोड़कर नहीं जा सकती।

उसने साहस किया। भीतर कोठरी में गई। एक पुराना टूटा ताला पड़ा था। उसकी ताली थी नहीं। पर जब घर छोड़ कर जाना है तो चाहे जैसे भी किवाड़ हों उनमें ताला लगाये बिना कैसे जाये ? उसने द्वार बन्द कर वह ताला वैसे ही उसमें चिपका दिया, और जैसे किसी काम को देरी हो रही हो, शीघ्रता से वहाँ से एक ओर को चली गई।

सूने घर में भूखी आत्माओं का अवशेष रह गया।

(५)

प्रतिमा उस गीली भूमि पर सो गई। असम्भव न था कि उसकी वह निद्रा अनन्त निद्रा होती।

अचानक उसे लगा कि उसकी ऊपर की भौंहों में भी भीषण पीड़ा हो उठी है। वह जागी।

अखण्ड निद्रा से जागी और जो उसने देखा उससे वह भय से भर गई।

उसने देखा, दिन चढ़ आया है। उसके चारों ओर दस पन्द्रह गिद्ध बैठे हुए हैं। एक साहसी गिद्ध ने उसके ललाट पर प्रहार किया है। और रक्त निकाल दिया है।

यह दृश्य देखकर वह सहम गई। वैसे जाग कर यदि उठने का प्रयत्न वह करती तो कदाचित् न उठ पाती। पर इस स्थिति ने उसमें न जाने कहां से शक्ति एकत्रित कर दी। वह उठ कर बैठ गई।

यदि गिद्धों के स्थान पर मनुष्य होते तो वे भी वही करते जो गिद्धों ने किया। मृतक को इस प्रकार उठ कर बैठते देखकर पन्द्रह में से एक भी मनुष्य वहां ठहर नहीं सकता था।

गिद्धों के उड़ जाने पर प्रतिमा ने अपने ललाट पर हाथ फेरा। मांस का टुकड़ा बिल्कुल पृथक् तो नहीं हुआ था, पर गिद्ध की चोंच से दो घाव हो गये थे। उनमें रक्त बहने को तो न था, हाँ एक एक बूँद चमक आई थी।

उसने हथेली से घावों को दबाया। चारों ओर और फिर आकाश की ओर देखा। वह कितनी देर सोई उसने गणित किया बारह और चार सोलह और छः बाईस घण्टे।

और वह पसीने से तर हो गई वह सच-मुच मर ही गई होगी, तभी तो गिद्ध उसके चारों ओर एकत्रित हो गये थे। उसे यकायक विश्वास नहीं हुआ कि वह वास्तव में प्रतिमा ही है, उसका भूत नहीं है। यह अवस्था थी जब वह अपने जीवित होने में सन्देह कर रही थी।

उसने अपने नेत्र मले। और फिर अपने जीवित होने के भ्रम को दूर करने का प्रयत्न किया, पर इस क्रिया से भ्रम बढ़ा ही, घटा नहीं। वह विक्षिप्त सी हो जाती, और इसी अवस्था में सम्भव है कि निद्रा में शांति खोजती और लेट जाती, पुनः न उठने के लिये। पर तभी एक घटना हो गई।

अंगों पर पूर्ण वश न होने के कारण उसके पैर का अँगूठा गीली भूमि में धँस गया था। उससे घास की एक मोटी सी जड़ ऊपर आ गई थी। उस

पर उस की दृष्टि पड़ गई। बिना बिचारे उसने उसे उठा कर मुख में डाल लिया। मुख अपने आप चल निकला दांतों ने पीसा, जिह्वा ने उसे इधर-उधर घुमाया। जब वह खाद्य निगला जाकर पेट की ओर चला तो एक चैतन्य उसके अस्तित्व में आ गया। उसे अब अपने जीवित होने में कोई सन्देह नहीं रहा।

जीवित रहने के विश्वास ने उसका प्रयत्न जगा दिया। उसने प्रयत्न और शीघ्रता से भूमि को खोदना और उसमें से घासों की जड़ों को निकालना प्रारम्भ किया। कड़वी और कसैली जड़ों को खाकर उसके प्राण कुछ हरे हुए। उसे प्यास लगी।

उसने उठना चाहा, पर प्रथम यत्न सफल नहीं हुआ। उसे लगा कि घुटनों के प्राण निकल गये हैं और वह अब उसका भार सँभालने के योग्य शक्ति एकत्रित न कर सकेंगे। पर उसने पराजय स्वीकार न की। दो क्षण सुस्ताई, पुनः प्रयत्न किया, आधी सफलता उसे प्राप्त हुई और उसके पन्द्रह मिनट पश्चात् वह उठ कर खड़ी हो गई। तनिक उठ कर

खड़े होने की क्रिया में इतना समय कभी वह लगायेगी, इसका विचार भी उसके मस्तिष्क में न आया था।

उठते ही विचार आया कि मा क्या सोचती होगी। इसके पश्चात् वह ताल के किनारे गई, पानी पिया और फिर घर की ओर चली। उसका प्रयत्न था कि शीघ्रातिशीघ्र घर पहुंचा जाये। पर यह मील डेढ़ मील उसके लिये पूरी मंजिल बन गया। वह चलती, किसी वृक्ष अथवा झोपड़ी के सहारे खड़ी होकर सुस्ताती और फिर चलने लगती। बैठने से उसे भय लगता था। यदि एक बार बैठ कर उससे न उठा गया तो?

वह भयभीत हो गई। तो क्या, उसे गिद्ध और सियार जीवित ही खा डालेंगे। वह पीड़ा से छटपटायेगी और उनका विरोध न कर पायेगी। उसका जीवित शरीर वे तिल-तिल नोच कर ले जायेंगे।

नहीं वह कहीं रुकेगी नहीं, सीधी घर जायेगी। यदि उसे भूखों ही मरना है तो घर के भीतर मरेगी

जहां गिद्ध और सियार उसे जीवित न खा सकें।

इस भय ने उसे और शक्ति प्रदान की। उसके पैर दृढ़ता से भूमि पर पड़ने लगे।

उसने सोचा कि मां उसके वियोग में व्यथित होगी और रोती होगी। वह जाकर उसके गले लग कर खूब रोयेगी और फिर कभी घर से बाहिर न निकलेगी। उसके चले आने से मां को कितना दुःख हुआ होगा!

और तभी एक विचार उसके मस्तिष्क में आया। भैय्या लौट आया होगा। कुछ अवश्य लाया होगा भोजन प्राप्ति की सम्भावना से उसकी मरी भूख जैसे पहिले हरी हो गई और फिर तीव्र हो उठी। उसने उसके पैरों को शीघ्रता से उठने को बाध्य किया।

एक परम सुखद भविष्य उसके सम्मुख था। वह जायगी और माँ प्रेम से भात भरी थाली परस कर उसके सम्मुख रख देगी। वह अपनी दशा सब

उसे सुनायेगी। गिद्धों की बात सुन कर वह क्या कहेगी?

अच्छा हुआ कि गिद्ध ने चोंच मार कर उसके घाव कर दिया है। अब कोई उसकी बात पर अविश्वास नहीं कर सकेगा। वह घाव प्रमाण स्वरूप दिखा सकेगी।

पर सुखद कल्पना विशेष ठहरने न पाई। अभाव पुनः सशक्त उसके सम्मुख आ गया। यथार्थ ने कहा यह झूठ है, सम्भावना झूठ होने की है, पर प्रतिमा अपनी उसी सुखद कल्पना से राग सहित चिपटी रही। धीरेन आया है अवश्य आया है।

द्वार पर दृष्टि पड़ते ही उसका माथा ठनका वह बन्द क्यों है? वह और भी उत्सुक हुई। पर आंगन में आकर दीवार पकड़ ठहर गई।

उसकी समस्त कल्पना धराशायी हो गई। वह धीरेन के लौट आने की कल्पना कर रही थी और यहां जिन्हे वह छोड़ गई थी वे भी घर को छोड़ गये हैं। इच्छा हुई कि वह ताले को स्पर्श करे। तभी

उस का हाथ रुक गया। नहीं वह इस घर को अभी छोड़ देगी। उसे लगा कि कोई भयानक घटना हो गई है। जिसके कारण उसकी मां और भौजाई घर छोड़ने को विवश हुई हैं।

वह आँगन से बाहिर गई। इधर उधर देखा कि कोई पड़ोसी दिखाई दे तो उससे पूछे। पर कोई दृष्टिगोचर न हुआ। उसे लगा कि अभाव अत्यंत गहिरा चला गया है। एक समय था कि उस स्थान पर खड़े होकर कोई समय दिन में ऐसा न था कि मनुष्य दिखाई न पड़े और आज मनुष्य का पता नहीं है।

वह आगे बढ़ी। एक द्वार पर गई। द्वार खुला था। पर भीतर किसी के होने की सम्भावना उसे लगी नहीं। सब भयावह रूप से सुनसान था

वह और आगे बढ़ी और उसने अपने को सुबोध के द्वार के सम्मुख खड़ा पाया। सुबोध, प्यारा-प्यारा सुबोध!

उसने पूर्ण प्राणों से उस द्वार के भीतर झाँका एक निस्तब्धता व्याप्त थी। वह भीतर घुसी सुबोध

की दोनों बहिनों में से किसी का पता नहीं था। वे कहाँ गई। उसके मन में प्रश्न उठा।

पर वह रुकी नहीं। आँगन को पार करके उसारे में पहुंची। और वहां जो देखा तो उसका हृदय कांप उठा। एक व्यक्ति चटाई पर निस्तब्ध लेटा है। वह उसके निकट गई। सूखा, शीर्ण कंकाल मात्र।

उसका सुबोध। उसके मनमें उठती भागने की अभिलाषा को प्रेम के प्रवाह ने दबा दिया। उसका सुबोध। क्या यह बलिष्ठ उद्योगी युवा भी भूखों मर रहा है। पर जो वह देख रही है उसमें सन्देह नहीं है?

वह उसके पास जाकर बैठ गई। इस समय न जाने कहाँ से शक्ति आ गई।

हाथ से स्पर्श कर पुकारा। "सुबोध!"

युवक के कानों में जैसे अमृत की बूंदे गिर पड़ी हों। उसने नयन खोल दिये और ओठों पर एक मुस्कान दौड़ गई। पर इससे अधिक अपने को व्यक्त वह न कर सका।

प्रतिमा ने उसके मस्तक पर हाथ फेरा। उसे लगा कि वह जैसे जल रहा हो। वह उठी। सुबोध के लिये कुछ चाहिये। वह द्वार तक आई और अब उसने उस स्थान की ओर देखा जहाँ कि वह सुवर-छौना उसने फैंका था यदि वह इस समय होता तो वह सुबोध को बचा ले जाती। विवशता से उसका हृदय मसोस उठा। उसे लगा कि वह स्वस्थ है। सुबोध के लिये कुछ...।

पर शीघ्र उसके पैर उसके नीचे डगमगाये उसे लगा कि वह स्वयं खड़ी न रह सकेगी। दीवार उसने पकड़ ली। रात्रि ऊपर से आ रही है। उसने बाहिर का द्वार बन्द किया और फिर भीतर लौट गई उसे विश्वास हो गया कि अब उसका जीवन विशेष नहीं है, पर वह सुबोध के निकट मरेगी यह सबसे बड़ा सन्तोष है।

वह गई। सुबोध के निकट बैठी उसके मस्तक पर हाथ फेरा। पर अधिक देर बैठी न रह सकी वह उसके पास लेट गई। उसके मस्तक को चूमा

और उसके अर्ध निर्जीव हाथ अपने ऊपर खींच कर अपने हाथ उसके कण्ठ में डाल दिये।

रात्रि की अंधेरी घिर आई। गांव की भूखी आत्मा अंधकार भरी दीर्घ आहें लेने लगी।

(६)

धीरेन जब घर से निकला तो सभी के प्रति वह अत्यन्त उदासीन था। उसने जीवन बनाये रखने के लिये जो कुछ पाया, उसे ही वह घर में लाया था पर वहाँ इस प्रकार वह फेंक दिया गया।

उनके मनमें बाहिर बैठे धार्मिक संस्कारों की सत्यता पर उसे इतना विश्वास नहीं हुआ जितना कि उन सबके अपने विरुद्ध मिल जाने पर। उसने विचारा कि वह इस भावना से फेंका गया है कि यह ठीक नहीं है और लाओ। जैसे कि वह उनका नौकर है क्रीत दास है। घर से निकल कर कुछ करती तो जान पड़ता। और वह उस घर से अधिकाधिक दूर जाने को बाध्य हो गया।

इस बार वह गांव की ओर नहीं गया। उसने निश्चय कर लिया कि वह लौटकर नहीं आयेगा।

जिस घर में इतना स्वार्थ है, वहां उसके लौटकर आने से क्या लाभ ? यदि उनके भाग्य में भूखों मरना ही बदा है तो वह विधाता के इस लेख को मिटा कैसे सकता है ?

वह चलता गया, जैसे नशे में। उसकी दिशा निश्चित न थी। एक बाग के निकट पहुंचा, उसके भीतर अंधियारा था। उसने वहां किसी रक्षक को न पाया, पर आम के वृक्षों में इस समय फल न थे। और नीचे की भूमि पर मिट्टी, चिकनी, फिसलनी मिट्टी जमी थी।

वह एक आम के वृक्ष को पकड़ कर खड़ा हो गया। भयभीत वन्य-पशु की दृष्टि से चारों ओर देखा और तभी उसके नयन चमक उठे। बाग के एक किनारे पर एक टीला सा था, उसके ऊपर सुन्दर हरियाली फैली हुई थी।

धीरेन वृक्ष को छोड़कर उस दिशा में चला। शीघ्रता करने के कारण एक स्थान पर उसका पैर फिसला पर संभल गया। फिर चाल धीमी कर

दी। उसे भय हुआ कि एक बार गिरने के पश्चात् वह उठ सकेगा या नहीं इसमें सन्देह है।

टीले पर वह बैठ गया, उसे वह बाग आशा और प्राणों से भरा दिखाई पड़ा। उसने वहां पर उगे, निस्वाद, कसैले, खट्टे पत्ते खाये, और खूब खाये। परमात्मा को मौन धन्यवाद दिया। इतना भोजन पेट में पड़ने के पश्चात् उसकी बुद्धि लौटती जान पड़ी। नेत्रों में प्रकाश बढ़ गया। कान जो कुछ अब तक नहीं सुन पा रहे थे अब सुनने लगे। टीले पर थोड़ी सी खाद्य वनस्पति और बची थी, उसे उसने तोड़कर अपनी धोती में लपेट कमर से बांध लिया।

उसने सोचा कि घर? नहीं। इच्छा हुई कि इतना साग है घर ले चले। "नहीं" किसी ने बल पूर्वक कहा। मैं अब उस घर में लौटकर न जाऊँगा। क्यों जाऊँ? मरना है, मरें।

उसके नयनों में अश्रु आ गये, उन लोगों के भूखों मरने की कल्पना करके और अपनी विवशता

पर। पर जब वह उठा तो उससे विपरीत दिशा में चल दिया।

वह सड़क की ओर चला जो अब भी वहां से दो मील से कम न थी। विचार था कि सड़क पर पता लग जायगा कि खाद्य मिलने की सम्भावना कहां पर है। वह ज्यों-ज्यों चलता जा रहा था, त्यों-त्यों उसमें शक्ति आती जा रही थी, और उसके डग उठते जा रहे थे।

पगडण्डियों के आश्रय चलते-चलते वह एक ऊपर भूमि के टुकड़े में पहुंचा। इसके एक कोने पर एक जामुन का पेड़ था, इस पेड़ पर उसने कितनी ही क्रीड़ायें की थीं। अब क्या वह पुनः देखने को मिलेगा ?

ध्यान से उसने वृक्ष की ओर देखा। उसे लगा कि वह वृक्ष भी जैसे अभाव से अछूता नहीं है। उसके सब पत्ते लोग तोड़ ले गये हैं। उसकी दृष्टि वृक्ष की जड़ की ओर गई और वह एक मानव रूप पर वहाँ अटक गई। कौन है जो यहां विश्राम कर रहा

है ? उसकी उत्सुकता बढ़ी और वह उस दिशा में चल दिया।

देखा वह उसका मित्र उमेश है। उमेश वहां तनिक विश्राम लेने के लिये बैठा था, पर अब आध घण्टे से निरंतर प्रयत्न करने पर वह केवल पसीने से तर हो पाया है। अपने को मृत्यु भय से भर पाया है। इससे अधिक सफलता उसे नहीं हुई।

धीरेन को वहां आता देख उमेश के नयन खिल उठे।

हाथ का सहारा देकर उसने उमेश को उठाया। उमेश की दृष्टि से कृतज्ञता बरस रही थी।

"कहां को ?" उमेश ने पूछा।

"भोजन की खोज में—।"

"शिवपुर में सदाबरत लगा है।" उमेश ने सूचना दी और बताया कि वह वहीं जा रहा था; थकान से स्वस्थ होने को बैठ गया तो यह दशा हो गई।

धीरेन ने देखा कि उमेश की अवस्था वास्तव

में शोचनीय है। उसके मन में विचार आया कि वह साग में से कुछ उसे दे दे। पर यदि और कुछ न मिला तो? इस समय उमेश को साग देना उसके लिये अपना जीवन देना है।

उसने साग देने की भावना को बलपूर्वक दबा दिया। पर दोनों जने साथ नहीं चल पा रहे थे, उमेश धीरे-धीरे शक्ति-हीन होता जा रहा था और धीरेन में ज्यों-ज्यों साग पचता जा रहा था एक नवीन शक्ति आती जा रही थी।

थोड़ी देर में यह स्पष्ट हो गया कि दोनों का साथ प्रायः असम्भव है। उमेश ने दीन दृष्टि से उसकी ओर देखा, जैसे कि वह उससे प्राणों की भीख मांग रहा हो। यह दृष्टि धीरेन न संभाल पाया, उसकी आत्म-रक्षा की भावना जैसे यकायक तिरोहित हो गई। उसने धोती में से आधे के लगभग साग उसके सम्मुख डाल दिया। उमेश उसे शीघ्रता से खाने लगा।

"धीरे-धीरे चबाकर, नहीं तो हानि करेगा।"

और उसे पीछे आने के लिये छोड़कर वह स्वयं आगे चल खड़ा हुआ।

इच्छा हुई कि वह स्वयं भी दो मुट्ठी साग खाये पर यदि आगे कुछ न मिला तो? शिवपुर एक कोस से कम नहीं है, और इच्छा का दमन कर उसने साग को फिर कमर से लपेट लिया।

कल्पना उठी कि वह शिवपुर पहुंचेगा, सदाबरत एकत्रित करेगा और फिर उसे परिवार के लिये ले आयेगा। उसे अब लगा कि उसने इतना साग उमेश को क्यों दिया? अब उसे स्वयं भी उस सदाबरत के अन्न में से खाना पड़ेगा, जिसे उसने अपने परिवार के लिये सुरक्षित रक्खा हुआ है। उसका परिवार अब समस्त शेष संसार से उसे काटने में दत्तचित्त हुआ।

वह सड़क पर पहुंच गया। यह राज-मार्ग आज जितना भरा था उतना केवल फसल के दिनों में होता था। पर आज जो लोग उस पर चल रहे थे उनका रूप रंग ही दूसरा था। ऐसा लगता कि वह यम के द्वार का मार्ग है और ये समस्त कंकाल

एक अबाध गति से नियति-पाश में बंधे उस ओर चले जा रहे हैं।

इतनी भीड़ देख कर धीरेन का हृदय बैठने लगा, स्वयं अन्नपूर्णा ही यदि पृथ्वी पर उतर आयें, तो इतने भूखों की उदरपूर्ति हो सकती है। साधारण सदावरत से क्या होगा। और उसे स्वयं भोजन मिलने की आशा बहुत कम हो गई। फिर मन में उठा कि उसने उमेश को साग क्यों दिया ? शशि और कमल के कंकाल उसके सम्मुख आ गये। प्रतिमा की धर्म पर दृढ़ क्रुद्ध मूर्ति नयनों के सम्मुख उपस्थित हो गई। और निश्चेष्ट मार्ग में पड़ा सुवर-छौने का शरीर अत्यंत स्पष्ट सम्मुख आया। वह परिवार के जीवन का एक आश्रय हो सकता था।

नहीं, प्रतिमा ने ठीक ही किया। मरना तो वैसे भी है और वैसे भी।

फिर उसकी दृष्टि अपने सहयात्रियों की ओर गई। इतने यात्री थे, पर सड़क पर पैरों की चापों के अतिरिक्त, और कोई शब्द नहीं सुनाई देता था। एक भयावह स्तब्धता छायी हुई थी,

जैसे कि जीवित मानव नहीं, लाशें चल रहीं हों। अपने को इस समुदाय का सदस्य पाकर धीरेन कांप उठा। कदाचित् उनमें से प्रत्येक अपने अपने हृदय में कांप रहा था।

यदि मानव इतने वर्षों का बीच देकर भेड़ियों से दूर नहीं हो गया होता तो निःसन्देह वे लोग किसी एक पर टूट पड़ते और उसे अस्थियों तक खा जाने के पश्चात् दूसरे अभागे की बारी आने की प्रतीक्षा करते। वे लोग जीते, अपने ही परिवार के रक्त मांस पर जीते।

सड़क की स्तब्धता भंग होती थी कभी किसी बालक की रीं रीं से, अथवा वायु के झोंकों या पक्षियों के कलरव से। मानव की इस दशा में पक्षियों का कल गान रुदन में परिवर्तित हो गया था।

धीरेन ने दृष्टि ऊँची की और फिर वह जैसे स्वयं नीची हो गई जो कुछ देखा उसे सहन करने का साहस उसमें नहीं था।

उसने देखा—मां शिशु को गोद में लिये-लिये थक गई है। वह शिशु उस गोद में न जाने

कब शरीर मात्र रह गया है। उसने उसे वहीं सड़क पर एक कोने में डाल दिया है और गिद्ध वहीं से उसे दूर खींच ले गये हैं। मानव की श्रेणी चली जा रही है, पर किसी में इतना साहस और विचार शेष नहीं है कि अपनी जाति के बालक के शरीर की रक्षा इस अपमान से करें।

उसने जो कुछ देखा उसमें उसका भारी हृदय और भी अधिक भारी हो गया। उसे अब तक व्यक्तिगत मृत्यु का भय था, अब सामूहिक मृत्यु का रूप सम्मुख आया। एक सान्त्वना उसके हृदय को हुई। वही नहीं मर रहा है। उसी का परिवार ही नहीं मर रहा है इतने अन्य मनुष्य भी उसी ज्वालामुखी के मुख की ओर चले जा रहे हैं। सब ओर से नयन मूँद कर वह चलता चला गया।

जब मनुष्य चारों ओर से द्वार मूंद, अपने में बन्द हो बैठता है तो ऐसे समय में वह अपनी स्थिति और भी दुःखमय बना लेता है। बाहिर देखना बन्द कर देने से धीरेन के भीतर कल्पनायें उठने लगीं। उसके परिवार की दशा नाना भीषण सम्भावनाओं

में उसके सम्मुख आने लगी। मां को, बहिन को वह अत्यंत दुःखद अवस्थाओं में देखने लगा और यह आन्तरिक पीड़ा इतनी बढ़ी कि वह आर्तनाद कर उठा। उसने बल पूर्वक अपने नेत्र खोले और इस कंकालों के जलूस पर लगा दिये।

उसे अनुभव हुआ कि थकान उस पर आने लगी है। पर इतने भूखों के बीच वह अपनी भोजन सामग्री दिखाने का साहस न कर सका। सामग्री छिन जायेगी। यह तो होगा ही; पर इन कंकालों के प्रहार से वह पुनः उठ पायेगा इसमें संशय ही है।

उसका हाथ धोती में लिपटे साग पर चला गया। साग का स्पर्श हाथ से होते ही जैसे वह उसके पेट में पहुंच गया हो। उसकी बैठती शक्ति लौट आयी। पैरों में बल आ गया। और वह अधिक आत्म विश्वास के साथ चलने लगा। जब आवश्यकता पड़ेगी तो वह एकदम भूखा नहीं रहेगा।

जिस समय धीरेन शिवपुर पहुंचा तो रात्रि हो चुकी थी। सदावरत बन्द हो चुका था। एक

बड़ी भीड़, जो उसे असंख्य जान पड़ी, उसी आशा में पड़ी थी। सदाबरत में भोजन का परिणाम सीमित है यह उसने सुना। केवल पहिले पांच सौ व्यक्तियों को भोजन मिलता है और वह भी पेट भर नहीं। चुल्लू भर, जिससे मनुष्य जियेगा तो अधिक कदाचित नहीं, हां उसके मरने में देर लग जायगी। पर जब अन्न प्राप्त हो जाने की आशा क्षण क्षण लगी हुई है तो प्रत्येक अपने जीवन के क्षणों को इतना लम्बा खींचना चाहेगा कि जब तक वे अत्यन्त सूक्ष्म होकर अपने भार से ही स्वयं न टूट जायें।

अन्धेरे में धीरेन ने दो मुट्ठी साग खाया। चाहा कि और न खायें, क्या पता कल भोजन मिले या न मिले।

पर जब दो मुट्ठी खा लिया तो मन माना नहीं। अच्छा एक मुट्ठी और?

और उसके पश्चात् तृष्णा और बढ़ी।

अच्छा एक मुट्ठी और!

और यह दशा उस समय तक रही जब कि

अचानक उसके हाथ ने पोटली की रिक्तता अनुभव न की; आशंका से उसका हृदय कांप न उठा। कठिनता से दो मुट्ठी साग शेष रहा होगा। भय से उसने और अधिक खाना बन्द कर दिया। उसके मन में उठा कि उसने उमेश को उतना साग क्यों दे दिया; थोड़ा क्यों नही दिया।

उसे कल भोजन अवश्य मिलना चाहिये। वह अब तक परिवार के लिये भोजन की चिन्ता कर रहा था पर अब उसे लगा कि परिवार तो दूर की वस्तु है उसे भी भोजन प्राप्त हो जाये तो यही बड़ी बात होगी और इस विचार ने उसकी समस्त शांति हर ली।

उसने देखा कि सदाबरत बंटने का स्थान उससे लगभग सौ गज दूर है। नहीं, इतना अन्तर वह दिन निकलने पर पार नहीं कर पायेगा। उसे रात्रि में ही धीरे धीरे उस ओर बढ़ना चाहिये। और वह आगे बढ़ा।

उसे शीघ्र ज्ञात हो गया कि इस प्रकार सोचने वाला वह अकेला ही नहीं है, और भी हैं जो इसी

चेष्टा में हैं, और फिर उसे लगा कि केवल कुछ ही नहीं प्रायः सभी इसी चेष्टा में हैं कि उस पुण्य-स्थान के अधिकाधिक निकट रहें। रात्रि भर क्षुधार्त लोगों में स्थान के लिये झगड़ा होता रहा। नींद दूर का विषय थी, भय था कि जो सो गया वह प्रातः किसी के जगाये न उठेगा। उस भय से कुछ लोग सोते न थे, कुछ लेटते तक न थे।

भौतिक शक्ति की सीमा होती है और वह विभिन्न व्यक्तियों के लिये दो तीन बजे पश्चात् आनी प्रारम्भ हो गयी। जिन लोगों ने निद्रा का प्रारम्भ में अपमान किया था वे निद्रा और थकान से आक्रांत हो अपने को भूल भीषण गहिराई से सोने के लिये लेट जाने को विवश हुए केवल अल्पांश ही प्रातः काल तक जाग सके और धीरेन उनमें से एक था।

जब प्रातः काल आया तो उसने पर्याप्त लोगों को सोता पाया। दिन निकलते ही आगे जाने के लिये फिर झगड़ा प्रारम्भ हो गया। पर शीघ्र व्यवस्था के प्रतिनिधियों के आ जाने से लोगों को एक पंक्ति में खड़ा होना पड़ा। पर वह पंक्ति

निरंतर किसी विद्रोही की प्रबल प्रकृति के कारण टूटती रहती थी और अनिच्छा पूर्वक भी इन सुधातों पर उन्हें कठोरता का प्रयोग करना पड़ता था, दस बजे के लगभग भोजन बँटना प्रारम्भ हुआ। एक. एक गिलास भर कर प्रत्येक पात्र में अधिकारी उड़ेलते जाते थे, और व्यक्ति अपना अहोभाग्य मान कर वहां से चलता जाता था।

धीरेन ने मिट्टी के एक टूटे से पात्र में भोजन लिया और फिर सयत्न उसकी अन्य लोगों के आक्रमणों से रक्षा करता बाहिर निकल गया। दूर जाकर उसने अपने भोजन की ओर देखा। कुछ चावल, कुछ दाल, कुछ साग और बहुत कुछ पानी क्या खाये और क्या बच्चों के लिये बचाये ?

इस विचार में था कि उसने दृष्टि ऊँची की एक दस वर्षीय कन्या उसकी ओर निरीह दृष्टि से ताक रही है।

"जा न ! वहां मिल रहा है।"

पर वह लड़की खड़ी रही।

"जायेगी नहीं।"

"तीन दिन से यहाँ पड़ी हूँ मुझे नहीं मिल पाता।"

और धीरेन को उसके कथन पर विश्वास हो गया। उसे स्वयं कितनी धक्का मुक्की और रात्रि भर के जागरण के पश्चात् इतना प्राप्त हो पाया है।

"जा तो फिर मैं क्या करूं ?"

द्रवित होते हृदय को अत्यन्त रूखा बना कर उसने कहा।

लड़की ने जैसे अन्य लोगों से अपनी भिक्षाटन कर तिरस्कार सुना था वैसे यहां भी सुना और लड़-खड़ाती चल दी। धीरेन निरन्तर उसे देखता रहा। जब वह कुछ दूर चली गयी तो उसे प्रतिमा से उसकी समानता अनुभव हुई।

उसने पुकारा "ओ लड़की।"

लड़की घूमी। आशा की झलक उसके नयनों में थी। धीरेन ने हाथ के संकेत से उसे बुलाया।

दो घूंट रसा उसे पिला कर कहा "जा भागजा।" वह लड़की कृतज्ञ नेत्रों से उसे देखती खड़ी रही। "जायेगी नहीं, जा भागजा।"

और अब वह धीरे धीरे वहाँ से चली गयी। उसे अनुभव हो रहा था कि सहस्रों मनुष्यों में आज उसे एक मनुष्य मिला है। इसके लिये वह अपना सर्वस्व दे सकती है। देकर सुखी होगी।

धीरेन ने फिर कहा "जाती क्यों नहीं !"

और वह बेमन की वहाँ से चली।

धीरेन ने उसकी ओर पीठ फेरी। साग निकाल कर खाया खूब चबा चबाकर और उसके ऊपर शेष रसा स्वयं पीलिया, जो अन्न के कण और साग उसमें था उसे उसने अपने परिवार के लिये बचाकर रक्खा।

इतना खाने के पश्चात् उसे लगा कि वह आज भर पेट भोजन पा गया है। इसके पश्चात् उसकी बुद्धि जागी। यहाँ इस सदाबरत के अन्न से उसका निर्वाह न होगा। कुछ और करना चाहिये। उचित यह है कि वह अपने परिवार को लेकर किसी नगर में चला जाये और फिर भाग्य के भरोसे अपने को छोड़ दे।

वह चल पड़ा। क्षुधार्तों की भीड़ एक ओर जा रही थी उन्हीं में मिल कर। दुकानें थीं, और उनमें

कुछ अन्न भी था चारों ओर शांति थी। पर अचानक व्यवस्था पुरानी कड़ी की भांति अभाव के भार से टूट गयी। क्षुधार्त दुकान में टूट पड़े। धीरेन ने अवसर पाया।

उसे लगा कि वह डाका भी डालेगा। वह सब से आगे बढ़ गया और तीन चार सेर अन्न अपनी पोटली में बांध कर, जब तक व्यवस्था लौटे तब तक, दुकान से सौ डग दूर चला आया। और इसके पश्चात् उसने पीछे फिरकर न देखा। इस अन्न को सावधानी से अपने वस्त्रों में छिपा लिया। और सीधा घर को चला।

अपने जाने के चौथे दिन पश्चात् परिवार को बचा ले जाने के मनोरथ लेकर जब वह अपने घर पहुंचा तो तीसरा पहर हो चुका था। बन्द किवाड़ देखकर उसका माथा ठनका। भीतर गया ताले को छुआ, वह तुरत खुल गया। भीतर प्रवेश किया और सब सुनसान पाया। उसका हृदय बैठने लगा। इतना परिश्रम सब व्यर्थ गया। उसका परिवार उजड़ चुका था।

वह लौटा। ताला जैसा लगा था लगा दिया। तनिक देर आंगन में बैठना चाहा, पर यह उससे हो नहीं सका। वह जैसे उसे काटने दौड़ता हो। वह बाहिर निकल आया।

किसी से पूछे, कि ये सब कहाँ गये ?

आस पास कोई दिखाई न पड़ा। जो थे वह अन्न की खोज में घर छोड़ कर भाग गये थे। उसका ध्यान सुबोध के घर की ओर गया। प्रतिमा को उस घर में आकर्षण था, वही अब उसके भाई को उस ओर खींच लाया, किवाड़ केवल भिड़े मात्र थे। उसने उन्हें खोला।

देखा भीतर कोई लेटा है। पुकारा 'सुबोध !'

उसे अनुभव हुआ कि कोई आहट भीतर हुई है। वह और आगे बढ़ा। देखा कि चटाई पर एक दूसरे से चिपटे दो शरीर पड़े हैं। एक सुबोध है, और दूसरे को पहिचान कर उसका हृदय धक से हो गया।

उसे सुबोध से प्रतिमा को लेकर विरोध था, पर इस समय वह जगा नहीं।

उसने प्रतिमा को स्पर्श किया और सुबोध को भी। दोनों ठण्डे थे और निष्प्राण।

उसका हृदय एक बार धड़का। दोनों सटे शरीरों को ध्यान से देखा। ये वास्तव में सुखी हैं। मन में उठा इनकी अन्त्येष्टि...।

यह असम्भव है।

उसके नयनों में अश्रु भर आये। प्रतिमा के शीस पर हाथ फेर कर कहा, "बहिन युग युग सौभाग्यवती हो।"

और फिर झुक कर प्रतिमा का और उसी सम्बन्ध से सुबोध का मुख चूमा। सुबोध का हाथ जो प्रतिमा के शरीर पर से हट गया था उस पर रक्खा और शांत डग धीरे धीरे वापिस आया। किवाड़ भली भांति बन्द कर दिये।

बाहिर आकर उसे सूझा कि प्रतिमा की यह दशा हो गई है, शेष की ?

और उसे एक धक्का अनुभव हुआ। उसका समस्त परिवार मर गया है। वह अब जीकर क्या करेगा ?

जी में आया कि जो भोजन सामग्री उसके पास है उसे फेंक दे। पर शीघ्र ही बुद्धि ठिकाने आगई। उसे अनुभव हुआ कि जीवन में दुख भले ही हो पर फिर भी एक सुख है, केवल जीवित रहने मात्र में और इस सुख को वह छोड़ नहीं सकता, आत्म-हत्या वह नहीं करेगा।

(७)

वृद्धा इन्दुमती ने कुछ गलियों में प्रतिमा को खोजा। पर जैसी स्तब्धता उसने गांव में पायी उससे वह भयभीत हो गयी। उसे विश्वास हो गया कि प्रतिमा इसी स्तब्धता में खो गयी है। उसे खोज निकालना उसके लिये असम्भव है।

इस लिये जब वह इस बार गाँव से बाहिर निकली तो पुनः गाँव में न घुसी। गांव का वातावरण उसे अत्यन्त असह्य और भयावह लगा। बाहिर निकल कर उसे अनुभव हुआ कि उसके प्राणों पर से जैसे कोई महान् भार उतर गया हो। वह यहां पर अपने को अधिक सप्राण पाने लगी।

तभी उसका ध्यान अपने हृदय से लगी शशि पर गया।

परमात्मा ने उसे विपत्ति दी है वह सह लेगी। पर इस निरीह शिशु ने क्या अपराध किया है, जो उसे इस प्रकार दण्डित किया जा रहा है? यदि भगवान् उसकी शशि को बचाने का उपाय करदें तो वह अपने प्राण देने को तैयार है।

उसे तो अब मरना ही है। वह वृन्दावन जाकर नहीं मर सकी, यही एक दुख उसे है। पर अभी समय है, यदि वह वृन्दावन में नहीं मर सकी है तो उसके मार्ग में तो मर सकेगी। पर यह शशि! यह उसके पैरों में बेड़ी बन कर जो पड़ी है, यह उसे शांति से मरने भी न देगी। इसके पश्चात् उसे रूठे धीरेन की, खोई प्रतिमा की याद आई और उसने शशि को हृदय के निकट कस लिया।

उस लघु कंकाल ने नयन खोले। दादी की ओर देखा और पुनः मूंद लिये। दादी ने उसे चूम लिया और दो अश्रु शशि के मुख पर गिर पड़े। शशि निस्तब्ध पड़ी रही।

इन्दुमती ने सोचा अब क्या होगा ? यह शशि है और स्वयं वह। उसे अनुभव हुआ कि शशि को अधिक समय अब वह गोद में नहीं रख सकेगी। उसके पैर उसके भार के नीचे डगमगाने लगे थे। अभी नहीं तो कुछ देर में वह शशि को अपने से पृथक् करने को बाध्य होगी।

पर इस विचार ने जैसे उसे धिक्कारा। वह ऐसी प्यारी शशि को छोड़ देगी ? नहीं वह मर जायगी, पर उसे अपने हृदय से लगाये रक्खेगी। वे दोनों एक साथ मरेंगी।

उसे लगा कि शशि धीरे धीरे भारी होती जा रही है। सम्मुख मार्ग पर दृष्टि डाली। सड़क अभी एक दम निकट न थी। वृक्षों के बीच से उसका भूरा धरातल चमक रहा था। कभी कभी धूलि भी उड़ती दिखाई दे जाती थी।

यदि वह वहाँ तक पहुंच पाती तो अवश्य ही कुछ आश्रय प्राप्त हो जाता। इतने मनुष्य आते जाते हैं। कोई उसकी अवस्था पर दया करके कुछ

न कुछ तो देगा ही। और उसे अनुभव होता कि एक पथिक उन्हें भोजन दे रहा है।

उसके डग शीघ्रता करते, पर शक्ति पीछे हटती, उसे लगता कि शशि ही भारी नहीं होती जा रही है वरन् उसके पैरों की अस्थियों में भी सीसा भर गया है, इतना कि वे उठ नहीं रहे हैं।

विचार आया कि एक क्षण बैठ जाये विश्राम करले, और इसके साथ साथ जैसे नींद का झोंका आया। पर इस विचार पर कार्य करने की भावना मन में आते ही वह भयभीत हो गई। क्षुधार्तों को यमराज इसी प्रकार अपने निकट बुलाते हैं। नहीं वह बैठने या लेटने की सोचेगी नहीं।

सामने सड़क है, और उसने गिन गिन कर डग उठाये। तभी उसे अत्यन्त तीव्र रूप से भूख अनुभव हुई। इधर उधर देखा समीप मिट्टी की गीली पपड़ी के अतिरिक्त और कुछ दिखाई न पड़ा। घास का एक तिनका तक नहीं।

इस निराशा ने उसकी कमर तोड़ दी उसे लगा

कि अब वहीं मर कर गिर पड़ेगी। वह मर जायेगी तो शशि का क्या होगा ?

जो बदा है वही होगा।

जब वह मर जायेगी तो देखने नहीं आयेगी।

और अब एक नवीन धारा उठी। जब वह स्वयं मर रही है तो शशि को कैसे सँभाले। यह बहू कितनी चतुर है कैसा उसे फंसाया है। हल्के कमल को स्वयं रक्खा और भारी शशि को उस पर लाद दिया।

आशा के प्रति वह क्रुद्ध हो उठी। जी में आया कि शशि को फेंक दे और कह दे कि सँभाल अपनी बेटी को। मैं नहीं जानती मरे या जिये। पर तभी शशि के सूखे चुचके मुख पर उसकी दृष्टि पड़ गयी। मन में जो उठा था हाथ उसे कर न पाये, पर उनकी पकड़ शशि पर ढीली अवश्य होगई।

इस भावना ने शशि के प्रति उसकी ममता में कमी कर दी। जो बन्धन अत्यन्त कसा हुआ था वह ढीला हो गया।

हां, मेरी प्रतिमा को बाहिर जाते हुए उसने

तनिक भी रोका नहीं। मैं उसकी बेटी को क्यों? पर फिर भी क्या वह उसकी पोती नहीं है?

और इन विचारों की दिशानुसार उसकी गोद में शशि हल्की भारी होती रही और डगमगाती, प्रत्येक पद पर सँभलती अस्थि-चर्ममात्र इन्दुमती सड़क की ओर बढ़ती गयी।

सड़क पर जिस समय वह पहुंची तो दिन का चौथा पहर लग चुका था और वह धूमिल हृदया अनन्त को नापने के मापदण्ड की भांति दृष्टि के छोर तक दोनों दिशाओं में फैली हुई थी।

इन्दुमती की आशा सफल न हुई। उसने सोचा था कि सड़क पर यात्री होंगे और उनसे कुछ प्राप्त हो सकेगा।

पर वहां यात्री नहीं थे यह बात नहीं है। यात्री थे पर बहुत कम, और बिल्कुल उसी दशा में जिसमें कि वह थी। वे भी भोजन के प्रति उतने ही लालायित थे जितनी कि वह।

अब जैसे शशि का भार सहस्र गुणित हो गया। बिना भोजन की आशा के वह कैसे इस भार को

रख सकेगी ? और तभी एक मोटर का हार्न उसे सुनाई दिया।

एक विचार उसके मन में उठा। वह भयभीत हुई और फिर चारों ओर देखा। दो कंकाल उसे देख रहे थे पर वह उन्हें न देख पायी वह सड़क के बीच में चली गयी। दोनों ओर देखा। शशि को वहीं लिटा दिया और स्वयं शीघ्रता से वहां से हट गई। सड़क के निकट एक वृक्ष की आड़ में छुप-कर क्या होता है यह देखने लगी।

एकाएक उसके मन में कल्पना उठी कि मोटर आयी, उसका पहिया शशि के ऊपर होकर निकल जायगा और एक चीख के पश्चात् उसकी प्यारी प्यारी शशि रक्त मांस का लोथड़ा रह जायेगी। उसने यह क्यों किया!

वह सिर से पैर तक कांप उठी। नहीं वह शशि को उठा लायेगी और दादी पोती दोनों एक साथ एक दूसरे से चिपके मरेंगे। वहां से चलने में शीघ्रता की। पर आत्मा की इस शीघ्रता को भौतिक शरीर सँभाल नहीं पाया, वह बुरी भांति गिरने को

हुई। वृक्ष को पकड़ कर सँभल गयी, इस दुर्घटना से उसका मुख छिल गया। पर स्वस्थ अवस्था में जहाँ पीड़ा हुई होती वहाँ अब जैसे कोई प्रभाव न पड़ा।

जब तक वह स्वस्थ हो तब तक भारी फौजी लारियों का हार्न सुन पड़ा और उनके भारी पहियों के दबाव से सड़क कांपने लगी। आत्म-रक्षा की भावना ने इन्दुमती को और भी वृक्ष की ओट में छिपा दिया।

अब उसकी शशि बचेगी नहीं, पिस जायगी। अपनी सन्तान की यह दशा देखने के लिये ही वह जीवित रही। पहिले क्यों नहीं मर गयी। दो वर्ष पहिले की बीमारी में अच्छे अच्छे लोग उठ गये, पर वह यह दुख भोगने के लिये बैठी रही। उसने कल्पना में देखा कि लारी शशि के ऊपर आ पहुँची है। और यह दशा देखने से पहिले उसने अपने नयन दोनों हाथों से बन्द कर लिये।

यह नेत्र कठिनता से दो क्षण बन्द रहे होंगे, पर यह दो क्षण उसे दो वर्ष के समान लगे।

और तब उसने उस मोटर काफिले की प्रथम मोटर का हार्न सुना।

हार्न बजा, रुका, पुनः बजा, पुनः बजा, मोटर की चाल धीमी हुई और अब इन्दुमती को विश्वास हो गया कि उन्होंने शशि को देख लिया है शशि इस बार पिसने से बच गयी है।

उसने अपने नयन खोले, देखा शशि वैसी ही पड़ी है। उसका एक हाथ कुछ हिला पैरों ने गति दिखाई। सड़क के द्वारा आयी मोटरों से शक्ति धारायें उसके जीवन को सजग बनाने की चेष्टा कर रही थी।

वृद्धा को लगा कि वह सड़क के अत्यन्त निकट छुपी है। गोरे अब उसे पकड़ लेंगे। वह बुरी प्रकार भयभीत हो गई। चाहा कि भाग कर दूर के वृक्ष के पीछे जा छिपे। पर मोटर अब अत्यन्त निकट आ गयी थी। भागने पर वह अवश्य देख ली जायगी। फिर सोचा कि पकड़ी जायेगी तो खाने को तो मिलेगा। पर उस वृक्ष के पीछे से हटने का साहस न हुआ।

मोटर के निरन्तर हार्न देने पर जब शशि वहाँ से न हटी और न किसी ने हटाया ही तो वाहक ने मोटर की गति कम की। तभी शशि ने अपने असमर्थ हाथ पैर हिलाये।

वाहक ने देखा कि बालक है और जीवित है। उसने मोटर को शशि के निकट लाकर रोक दिया। इन्दुमती सांसें रोके देखती रही।

उसने देखा कि टोप लगाये एक गोरा उसमें से उतरा। जाकर शशि को पहिले खड़े खड़े, फिर झुककर बड़े ध्यान से देखा और देखता रहा। उसका पैर हिला। इन्दुमती को लगा कि अब वह ठोकर मार कर शशि को वहाँ से हटा देगा।

उसने नयन मूँदने चाहे, पर वे खुले ही रहे। तभी एक और गोरा पीछे से उतर कर उसके निकट आया। मोटर के पीछे मोटरें खड़ी होती चली गयीं।

दूसरा गोरा आकर शशि के निकट बैठ गया। उसने पहिले गोरे से कुछ कहा। और इतनी देर में और कई गोरे वहां आकर एकत्रित हो गये।

गोरे ने शशि को उठा लिया। एक दौड़ कर मोटर में से बोतल उठा लाया। उसके मुख में कुछ डाला। और फिर वे गोरे जैसे प्रसन्नता से एक साथ कुछ कह उठे।

उन्होंने इधर उधर देखा। किसी को निकट न पाया। फिर शशि को एक तौलिये में लपेटा। मोटर में रक्खा और मोटरें चल दीं।

मंत्रमुग्ध की भांति वृद्धा उन मोटरों को देखती रही। उसकी शशि अब जी जायगी। तब डरावनी परन्तु अब प्यारी मोटरें उसके सामने से निकल गयीं।

जब अन्तिम मोटर चली गई तो वह पागलों की भांति दौड़ कर सड़क पर आई और 'हाय प्यारी शशि' कह कर चिल्ला पड़ी। कुछ क्षण स्थिर रह कर वह सड़क छोड़ लड़खड़ाती निकट के वृक्षों में चली गयी उसके पश्चात् किसी ऐसे मनुष्य ने उसे नहीं देखा जो उसे पहिचान सकता हो।

(८)

धीरेन घर से चला तो उसे दिशा का ज्ञान न

था। वह संसार में सब कुछ खोकर अकेला था सब कुछ अपना उसने अचानक अपने क्षणिक क्रोध के कारण खोया है। यह उसे अनुभव हुआ, पर इसकी उसे विशेष चिन्ता न थी।

यहां भी सब मरते और उसके नयनों के सम्मुख मरते, इससे तो अच्छा यही हुआ कि वे चले गये। अब वह अकेला है, देखा जायगा।

और फिर वह सड़क पर लौट आया। जहां यह ले जायगी वहां वह जायेगा, अब एक शोक की निधि लेकर उसे जीते जाना है। यदि वह जी सके तो! पर जी क्यों नहीं सकेगा?

उसके पास कई दिन का भोजन है। और इसके पश्चात् वह काम करेगा। जीवन भर मजदूरी की है अब भी करेगा, और जब काम मिल गया तो जीवन में कोई सन्देह नहीं, वास्तव में काम ही जीवन है। बिना इसके जीवन में कुछ सार नहीं।

आशा से उसका हृदय भर गया। वह काम प्राप्त कर लेगा और फिर...। इसके विचारने का

अधिकार जैसे उसका न था। आगे का प्रदेश शोक और संताप से भरा हुआ था।

उसने एक एक करके सब की कल्पना की और फिर अनेक बार सबकी एकसाथ कल्पना की। पर मन को बारम्बार डर के समुद्र में डुबो देने के अतिरिक्त और कुछ फल इसका न निकला।

उसने उन्हें बारम्बार भुलाने की चेष्टा की जितना वह भुलाने की चेष्टा करता उतना ही वे उसके सम्मुख और प्रत्यक्ष हो जाते थे। जब तक उसके पास भोजन रहा, उसकी दशा यही रही।

धीरेन को काम की खोज थी। एक स्थान पर छोटे छोटे मकानों की एक विशाल पंक्ति जैसे पृथ्वी को फोड़ कर ऊपर निकली चली आ रही है और बहुत से मनुष्य चींटियों की भांति नवागन्तुक की सेवा में लगे हुए हैं।

धीरेन ने सोचा कि यहां उसे काम मिल जायेगा, उसने जाकर जमादार से काम मांगा।

जमादार उसके सूखे शरीर को देख कर पहिले ठठाकर हँसा और फिर गम्भीर हो गया।

बोला "एक ईंट भी उठेगी तुझ से ?"

धीरेन ने ध्यानपूर्वक अपने शरीर की ओर देखा। क्या वह वास्तव में इतना दुर्बल लगता है ?

"जमादार मैंने जीवन भर मजदूरी की है, तुम्हारा काम पूरा करूँगा।"

जमादार ने धीरेन पर दया की। सोचा ऐसे मनुष्य से काम लेना पशुता है। बोला, "भई यह भारी काम तुम्हारे बश का नहीं है।"

निराशा के इस ज्वार ने धीरेन को हिला दिया यदि यहां काम नहीं मिला तो मृत्यु प्रत्यक्ष है।

वह गिड़गिड़ाया "जमादार।"

"जाओ यहां से।"

"जमादार मैंने जीवन भर मजदूरी की है। ईंटें उठवा कर देखलो चाहे।"

"मैं कहता हूँ, जाओ यहां से।" जमादार की दया क्रोध में परिवर्तित हो गयी।

धीरेन के नयनों में पानी भर आया। उसे दिखाई देना बन्द हो गया। वह वहाँ से चल पड़ा कहां जायेगा, इसका उसे कुछ पता नहीं था।

वह चाहता था कि शीघ्र स्वस्थ हो जाये, जिससे मजदूरी कर सके। पर भोजन का कहीं ठीक-ठिकाना न था। निराशा के पीछे मृत्यु धीरे धीरे अजगर की भांति अपने शिकार की ओर सरक रही थी।

तीन दिन पश्चात् धीरेन ने नगर के दूसरी ओर एक घास का मैदान देखा उसके बीच में कुछ बड़ी और हरी हरी बनस्पति उसे दिखाई पड़ी। उसे लगा कि इनमें कदाचित् कुछ पत्ते खाने योग्य हों। उसके नयनों में लोलुपता आ गयी। हृदय में एक आशा का संचार हुआ। कल उसे कहीं कुछ नहीं मिल सका था।

वह धीरे धीरे उन्हीं पत्तों पर दृष्टि लगाये उस मैदान की ओर चला। मैदान में पैर रक्खा ही था कि खाकी वर्दी पहिने लाठी लिये एक चौकीदार आकर उसके सम्मुख खड़ा हो गया।

"पीछे हट" उसने उसे डाटा।

वैसे वह पीछे हट जाता और कुछ बोलता नहीं

पर अपने सुखद स्वप्न को धराशायी होते देख कर मुख से निकल गया, "क्यों ?"

"क्यों क्या ? यह भूमि दुर्भिक्ष पीड़ितों के भोजन के प्रबन्ध के लिये ठेके पर ली गयी है किसी को इसके भीतर घुसने की आज्ञा नहीं है।"

और उसने अपनी लाठी का सिरा धीरेन की छाती से लगा दिया।

धीरेन कभी आकाश को और कभी उस हरे बनस्पति के धब्बे को विस्फारित नेत्रों से देख रहा था।

(६)

कमल को लेकर जब आशा घर से निकली तो उसने सीधा नगर का मार्ग पकड़ा। कमल का जीवन उसके जीवन पर निर्भर है। यदि वह कमल की रक्षा करना चाहती है तो पहिले उसे अपनी रक्षा करनी होगी।

नगर में उसने देखा कि दुर्भिक्ष पीड़ितों की संख्या उसके अनुमान से कहीं अधिक है। नगर वाले सौ दोसौ का प्रबन्ध कर सकते हैं पर इतने

अधिक व्यक्तियों का भोजन कहां से कैसे दें ? ऐसी अवस्था में दान का भी सिकुड़ जाना स्वाभाविक ही था। दुर्भिक्ष का भय विशाल अट्टालिकाओं में भी जा पहुँचा था।

लोगों ने स्थान स्थान पर लंगर खोले हुए थे। वह कमल को छाती से चिपटाये एक लंगर में पहुंची लंगर वालों ने सबसे एक पंक्ति बनाने की प्रार्थना की। पर सुना किसी ने नहीं। सब बांटने वाले के ऊपर ही जैसे टूटने लगे। खिचड़ी बँट रही थी प्रत्येक व्यक्ति को आध आध पाव।

जो सशक्त थे वे आगे बढ़े जा रहे थे। और नारियां तथा बालक पीछे धकेल दिये जा रहे थे। यह अवस्था देख कर थोड़ी देर में बाँटना बन्द कर दिया गया। स्त्रियों और बच्चों के लिये दूसरे स्थान पर बांटने का प्रबन्ध किया गया। पर यहां भी वही दशा थी।

अनाथ बालक पीछे रह गये और सब नारियां सामने आ गयीं। प्रबन्ध कर्ताओं को अनाथ बच्चों के लिये अलग बांटने का प्रबन्ध करना पड़ा।

परन्तु इतने से ही तो बस न था। क्षुधा की ज्वाला ने मानवता के समस्त प्रतीकों को झुलसा दिया था। क्षुधार्त नारियां दुर्बल बालकों से भोजन छीन लेती और अवसर पाकर सबल पुरुष भी बालकों और नारियों को बलात् भूखा रहने को विवश करते थे।

एक स्थान से भोजन लेकर ये लोग दूसरे स्थान को इस प्रकार भागते थे जैसे कि भूखे चूहे एक टुकड़े को खाकर दूसरे टुकड़े पर टूटते हैं। ऐसे समय व्यक्ति की सत्ता सर्वोच्च हो उठती है, वह अपने लिये चाहता है। जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये वह कोई सामाजिक बन्धन मानने को तैयार नहीं है। इन प्राकृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति का आश्वासन पाने पर ही मानव समाज पशुत्व से देवत्व की ओर बढ़ने के प्रयत्नों में सफलता प्राप्त कर सकेगा। इनके बिना सारी देवत्व की कल्पनायें और योजनायें अपने ही भार के नीचे धराशायी हो जायँगी। मानव मूलतः पशु है देव नहीं।

आशा को जो मिला उसे उसने मुख में तत्काल

रख लिया, इसी से क्षण भर पश्चात् जो हाथ विद्युत की तेजी से उसकी ओर बढ़ा था, उसे कुछ प्राप्त न हो सका। पर एक कौर खा लेने के पश्चात् उसकी क्षुधा और भी बढ़ गई। अग्नि में जो तनिक सा इँधन पड़ा तो वह और भी मांगने लगी।

वह भी अन्य लोगों के बीच इधर से उधर भागती फिरी। पर सब स्थानों पर उसके भाग्य ने साथ न दिया। सब कुछ खाकर भी उसके पेट में स्थान रिक्त ही अधिक रहा। इतने भोजन से कमल के लिये दूध नहीं उतर सकेगा।

इस दौड़ भाग में कमल बिलकुल पिस सा गया था। स्तन मुख में देने पर दूध चूसने की प्रवृत्ति उसकी न रह गयी थी। पुत्र की इस दशा को देख कर आशा को खटका हुआ। उसने ध्यान से कमल को देखा। वह जैसे जागी, कमल में है क्या ? सांस और अस्थि पंजर मात्र है। वह अपने शिशु से भयभीत हो गई। वह इसी को इतने दिनों से हृदय से चिपकाये हुए है। क्या

करे ? उसके हृदय में कितने ही भाव उमड़े। पर बेवश वह !

और उसने दूर सुना क्षुधा का आर्तनाद।

लज्जा अब कहीं नहीं थी। नारियां आधे वस्त्रों में इधर उधर फिर रही थीं तो फिर आशा को लज्जा कैसी !

यदि वह जी जाती है, भगवान् देश में खाने को पर्याप्त अन्न दे देते हैं तो लज्जा पुनः आ जायेगी। अभी तो जीवन रक्षा के लिये कण कण से युद्ध है, और उसने धोती का एक भाग खोला, उसका झोला बना कमल को उसमें रख अपनी पीठ से बांध लिया। अब वह चलने फिरने में अधिक स्वतन्त्र है। उसके दोनों हाथ खाली हैं आवश्यकता पड़ने पर वह दूसरों से भोजन छीन भी सकती है।

वह रात्रि को सड़क के किनारे अन्य भूखों के बीच पड़ी रही। पर नींद उसे न आयी। उसने देखा कि पास बिजली के खम्भे के नीचे कूड़ेदानी है उसमें कदाचित् कुछ खाने को मिल जाये। वह

उठी। देखा कि वही पहिली नहीं है। दो और हैं जो उस समय वहां उसमें भोजन खोज रहे हैं।

कूड़ेदानी में कूड़ा था चीथड़े थे, मिट्टी थी और जाने क्या क्या गन्दगी थी, पर प्राणों के भिखारी उसे इधर उधर हाथ से इस प्रकार कुरेद रहे थे कि मानो लखपती सीपियों के माँस में मोती खोज रहे हों।

आशा भी चुपचाप जाकर उनमें बैठ गयी। कोई लज्जा का काम नहीं था। हाँ जो पहिले से वहां थे उन्हें लगा कि यह औरत जाने कहां से आ गयी। दिन भर किसी ने उन्हें भोजन न मिलने दिया और रात्रि में भी यह डायन बँटाने को आ पहुंची। वे कूड़े को टटोलते जाते थे। हाथ गन्दगी में सने हुए थे और उसी में जो कोई तरकारी का छिलका पत्ता या अन्य किसी खाद्य का टुकड़ा मिल जाता था उसे शीघ्रता से मुख में रख लेते थे। ऐसा एक कण मुख में पहुंचते ही उनकी आत्मा खिल उठती थी। प्राणों से परमात्मा के प्रति अनन्त

कृतज्ञता की नदी उमड़ी पड़ती थी। जो वे कर रहे थे वही आशा ने भी प्रारम्भ किया।

उन्होंने उस कूड़े को एक बार खोजा, दो बार खोजा; और फिर जो एक ने देख लिया था, उसे दूसरे ने देखा और इस रीति वह कूड़ा धीरे धीरे कम कम होता चला गया। यह कूड़े की खोज जारी थी कि प्रातः काल के लक्षण दिखाई देने लगे। आशा उठ गयी और कुछ दूर हट कर लेट गयी।

आशा ने कई द्वारों पर भिक्षा मांगी। पर कहीं से उसे कुछ न प्राप्त हुआ।

एक स्थान पर एक नवयुवा ने उससे पूछा, "नौकरी करेगी?"

"क्यों नहीं बाबू?" उसके प्राणों ने हरे होते हुए कहा।

"भीतर आओ।"

किवाड़ खोल कर आशा भीतर गई।

उस नवयुवा ने उसे ध्यान पूर्वक सिर से पैर तक देखा। अस्थि और चर्म मात्र। पर कार्य के लिये प्रस्तुत

है। ऐसी नारी को वह अवश्य सहायता देगा। उसने सम्मति लेने के लिये पुकारा "मां !"

और वृद्धा मां ने कमरे में से कहा 'क्या है रे ?'

"मां यह एक नौकरानी है तनिक देख लो।"

मा जानती है कि उनका नरेश खब्ती है। प्रत्येक की सहायता करने को आगे बढ़ा रहता है। भला इस प्रकार संसार में रहा जाता है। पर वे उससे क्रुद्ध नहीं हैं। समझती हैं कि बड़ा होगा, समझ जायेगा।

"मां," नरेश ने फिर पुकारा।

और मां ने सोचा कि अपनी नौकरानी उन्हें दिखाये बिना वह मानेगा नहीं।

वे उठीं। जाकर देखा कि एक नारी कंकाल खड़ी है, वे उसके निकट गईं। ध्यान से देखा।

पूछा, "काम करेगी ?"

"अवश्य मांजी !"

मां ने सोचा नरेश की इच्छा है, दो बार भोजन पायेगी, ठीक हो जायगी। बोली, "अच्छा"

"तेरे पीछे क्या है ?" मां ने उधर देखकर पूछा।

"बेटा है मांजी !"

और आशा ने कमल को अपनी पीठ पर से उतारा, उसका मुख देखा तो उसका हृदय धक्क से हो गया। वहां कमल कहां ? यह उसका पंजर मात्र था। सांस न जाने कब जा चुकी थी।

वह चीख कर भूमि पर बैठ गयी।

"चल बाहर निकल।" मां ने कुछ झुंझलाकर कहा।

आशा कमल की लाश हृदय से लगाये बाहिर निकल आई। मां ने जोर से द्वार बन्द करते हुए कहा।

"यहां से चली जा, इस द्वार पर नहीं और आगे जाकर रोइओ।"

पुत्र को उन्होंने ताड़ना दी, "तू इतना बड़ा हो गया है, कभी आचार व्यवहार का तुझे ज्ञान होगा या नहीं ?"

आशा कमल को खोकर बिल्कुल टूट गई। वह एक ओर सड़क के किनारे बैठ गई और समस्त घटनावली पर विचार करने लगी। दुख की मात्रा

बढ़ चली, पर प्रकृति ने सीमा पर पहुंच जाने पर रक्षा का द्वार सब जगह रक्खा है। जब पीड़ा असह्य हो चली तो उसे चक्कर आने लगे और वह वहीं लेट कर बेसुध हो गई।

जब आशा की आंख खुली तो उसने अपने ऊपर एक नर्स को झुके देखा। वह ध्यान से उसके चैतन्य होते नयनों को देख रही थी।

"मैं कहां हूँ ?"

"अस्पताल में।"

"मैं मरी नहीं ? मेम सा'ब मुझे मरने की दवा दे दो। जिससे मैं मर जाऊं। हाय कमल !"

नर्स ने उसे सान्त्वना दी और फिर नींद आने की औषधि पिलाकर उसके मस्तक पर हाथ फेरा।

"जो होना था हो गया। भगवान के लेख में किसी का हाथ नहीं है।"

संतोष आता है, उसे आना होता है और आशा औषधि के प्रभाव में सो गई।

— १० —

पांच छः दिन में आशा अच्छी हो गई। उसे

कहीं जाने को स्थान न था। बाहर जाकर वही निर्मम भूख का सामना फिर करना पड़ेगा।

वह वहीं अस्पताल में नर्स बन कर रह गई। अपढ़ होने के कारण वह समझती विशेष न थी पर सफ़ाई आदि का सब कार्य कुशलता से देख भाल लेती थी और उसके ऊपर के पदाधिकारी उससे सन्तुष्ट थे। डाक्टर कहते थे कि यदि आशा की शिक्षा और होती तो वह अत्यन्त सफल नर्स होती। शिक्षा की कमी को वह हृदय से पूरा करने का प्रयत्न कर रही थी।

सिर से पैर तक नर्स का पहनावा पहिन कर आशा ने अपने को रोगियों में बिल्कुल मिला देना चाहा। इस सेवा में उसे शान्ति मिली।

जब मस्तिष्क रिक्त होता तो शशि, पति, सासु और प्रतिमा उसके सम्मुख आ जाते, उन सबका क्या हुआ? क्या जिस मार्ग से कमल गया है वे भी उसी मार्ग के पथिक हुए हैं? और यह विचार उसकी आत्मा को मसल देते। उसके नयनों से पानी झरने लगता और हिचकियां बंध जाती।

तभी किसी नर्स का सहानुभूति पूर्ण कर स्पर्श उसे जगा देता।

वह रोगियों की सेवा में अपने को अधिकाधिक लगाती। अपनी ड्यूटी देती और उसके पश्चात् जब तक नींद से झूमने न लगती वार्ड में बनी रहती शोक से भागने का यही एक उपाय था।

सोलहवें दिन आशा अपनी ड्यूटी समाप्त कर सदा की भांति पड़ोसी वार्ड में आई और उसने विभिन्न रोगियों की ओर देखा। सबके चेहरे भूख से इतने भरे थे कि करुणा का वहां जैसे स्थान ही नहीं था।

वह देखती जा रही थी कि एक रोगी पर जाकर उसकी दृष्टि अटक गई। उसका हृदय धड़क उठा। वह उसके निकट ली।

क्या यह सत्य हो सकता है कि वे जीवित हैं और यहीं इसी अस्पताल में हैं।

उसने रोगी के निकट जाकर उसे ध्यान से देखा। वह नयन बन्द किये पड़ा था। निश्चय ही यह उसका धीरेन है। उसकी इच्छा उससे

चिपट कर रो पड़ने की हुई। पर वह खड़ी रही, कांपती रही, गिर न पड़े इसलिये उसने बिस्तर पकड़ लिया।

उसका कंप बिस्तर द्वारा रोगी तक पहुंचा, उसके नयन खुले। आशा ने झुक कर उसके नयनों में झांका और फिर पति पत्नी ने एक दूसरे को पहिचान लिया।

धीरेन ने आशा को देखा, और उसके हृदय में एक धक्का अनुभव हुआ। आशा यहां ईसाइयों के वेश में। इससे अच्छा होता कि वह भूखों मर जाती। चाण्डालिन ने जीवन के लिये धर्म गंवाया।

और आशा की ओर से घोर घृणा से उसका मन भर गया। उसे लगा कि वह उसके निकट अब नहीं ठहर सकता। वह शीघ्रता से बिस्तर से उठा, दो डग रक्खे और भूमि पर गिर पड़ा।

आशा चीख उठी।

यह सब कुछ क्षणों में हो गया।

दो नर्सें और दौड़ आईं। डाक्टर आ गये।

"क्या हुआ ?"

"आशा का आदमी है।"

"आशा का ?" डाक्टर ने सहानुभूतिमय नेत्रों से उसकी ओर देखते हुए कहा। वह एक खम्भा पकड़े खड़ी थी उसके पैर कांप रहे थे।

"उसे संभालो" डाक्टर ने एक नर्स को आज्ञा दी। आशा का हृदय जैसे बैठा जा रहा था। वे मुझसे भागे क्यों ? क्या सब समाप्त हो चुका है ?

वह खड़ी न रह सकी। तभी डाक्टर का दृढ़ स्वर सुनाई पड़ा।

"कुछ नहीं, साधारण बेहोशी है। आशा मेरी बधाई स्वीकार करो।"